Chapter-4

अध्याय-4

रीतिकाल : अनुवाद के झरोखे से

4.1 रीतिकालीन परंपरा और अनुवाद

4.1.1 वृंद : एक अनुवादक

4.1.2 गिरिधर : एक अनुवादक

4.1.3 दीनदयाल गिरि : एक अनुवादक

4.1.4 महाराजा जसवन्त सिंह : एक अनुवादक

4.1.5 गुरुगोविन्द सिंह : एक अनुवादक

4.1.6 आचार्य सोमनाथ : एक अनुवादक

अध्याय-4
रीतिकाल : अनुवाद के झरोखे से

4.1 रीतिकाल और अनुवाद :

हिन्दी साहित्य के उत्तर-मध्यकाल को रीतिकाल के नाम से जाना जाता है । इस काल की व्याप्ति सत्रहवीं सदी के मध्य तक मानी गई है । डॉ. नगेन्द्र ने इसका काल लगभग सन् 1643 ई. से 1843 ई. तक माना है ।[1]

नामकरण की दृष्टि से विभिन्न विद्वानों में प्रायः पर्याप्त मतभेद रहा है । मिश्रबंधुओं ने इसे 'अलंकृतकाल' का नाम दिया तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसे 'रीतिकाल' के नाम से अभिहित करते हैं । पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इसे 'श्रृंगारकाल' की उपाधि देते हैं । इन नामों में प्रथम दो के नामकरण में काल की रचना-पद्धति का आधार लिया है जबकि श्रृंगारकाल नाम युग की रचनाों के आधार पर दिया गया है । परंतु डॉ. नगेन्द्र का मानना है कि इस युग के लिए 'अलंकृत' विशेषण अधिक समीचीन प्रतीत नहीं होता । क्योंकि मिश्रबंधुओं ने इसके समर्थन में जो तर्क दिया है - 'इस युग की कविता को अलंकृत करने की परिपाटी अधिक थी' - वह मान्य नहीं है । इसका कारण यह है कि इस काल की कविताएँ केवल अलंकृत ही नहीं हैं, इतर काव्यांग को भी यथोचित स्थान प्राप्त रहा है । कवियों की प्रवृत्ति भी केवल अलंकारयुक्त रचनाएँ करने की नहीं थी - उन्होंने रस पर अधिक भार दिया है । इसलिए इस काल को 'अलंकृत काल' कहना तर्कसंगत नहीं है। इस युग के लिए 'रीति' विशेषण का प्रयोग करनेवाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसे 'श्रृंगारकाल' कहे जाने में आपत्ति प्रकट नहीं की । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि इस काल को 'श्रृंगारकाल' कहना सर्वथा समीचीन है । इस नाम के लिए कहा जाता है कि - इस युग के कवियों की व्यापक प्रवृत्ति श्रृंगार वर्णन की थी, उसके स्वीकार किए जाने में आपत्ति की जा सकती है । विशिष्ट परिस्थितियों में लिखे गए छन्द अथवा रचनाएँ न तो श्रृंगारिक प्रवृत्ति की ही द्योतक हो सकती हैं और न इन ग्रंथों की विषय भिन्नता के तथ्य से दृष्टि ही फेरी जा सकती है । अतः इसे श्रृंगारकाल कहना भी अपने आपमें तर्कसंगत नहीं है । विषय-चयन की दृष्टि से इस काल को

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.277

'रीतिकाल' कहना चाहिए क्योंकि शृंगार को कमोबेश ग्रहण किया जाना भी एक विशेष प्रकार की 'रीति' (पद्धति) ही है ।[1]

साहित्य की रचना में तत्कालीन युगीन परिवेश का विशेष योगदान होता है । सामाजिक, राजकीय और सांस्कृतिक परिस्थिति का साहित्यरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है । रीतिकालीन सामाजिक अध:पतन का काल माना जाना चाहिए । इस काल में सामन्तवाद ने अपना जोर पकड़ रखा था । बादशाह ही सामाजिक व्यवस्था का केन्द्रबिन्दु था । बादशाह के अधीन अमीर उमराव थे । इनके बाद पदों के अनुसार कर्मचारियों का स्थान था । अपने ऊपरी को प्रसन्न करना इन सभी का कर्तव्य-कर्म था । अर्थात् निम्न वर्ग शोषित होता था मेहनत-मज़दूरी का पारिश्रमिक उनको कोड़ों की मार से मिलता था । निम्न वर्ग मज़दूरी करके भी अत्यंत गरीब था जबकि सम्पन्न वर्ग बिना मेहनत के ही समृद्ध था । भोगवाद और अनैतिकता का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा था । इसी कारण विलासिता बढ़ गई । अभिजात वर्ग भोग-विलास प्रिय था । इसी कारण मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग भी उनका अनुकरण करते । जिससे सारा समाज भोग विलास के साधनों की खोज में लगा रहता था । स्त्री-पुरुष के नैतिक संबंध टूट चुके थे । मर्यादाहीन समाज हो गया था । भोग विलास में डूबे हुए लोग अपनी संतानों की देखभाल भी ठीक से नहीं कर पाते थे । संतानों में भी भोग विलास के संस्कार आने लगे । अभिजात वर्ग की लड़कियाँ अपने यहाँ काम कर रहे सामान्य कर्मचारी के साथ भी प्रेम-व्यापार करने लग जाती थीं ।

बहुपत्नीप्रथा होने के कारण पति से प्रेम न पा सकने के कारण विवाहिताएँ भी ऐसा करने लग गई थीं ।[2] इस काल की राजकीय परिस्थिति तो इससे भी बदतर थी । मुगल शासन का इस काल में भारी अध:पतन हुआ, विनाश हुआ । शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल वैभव अपनी चरमसीमा पर था । 1658 ई. में शाहजहाँ के रुग्ण होने और उसकी मृत्यु की अफवाह फैलने के कारण उसके पुत्रों में सत्ता के लिए संघर्ष हुआ और अपने बड़े भाई दाराशिकोह की हत्या कर औरंगजेब सत्ता पर आ गया । औरंगजेब भी अपना शासन सुगठित नहीं कर सका । उसके पुत्रों में भी सत्ता

---

1. हिन्दी साहित्यकार इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.278-280
2. वही, पृ.283

के लिए संघर्ष हुआ और फिर इस साम्राज्य का पतन शुरू हो गया । विलासी शासकों के कारण हिन्दू रजवाडों, अवध के नवाबों आदि को भी अपना कारुणिक अंत देखना पड़ा ।[1]

रीतिकालीन साहित्य की ओर देखें तो उस समय जीवन के प्रत्येक पहलु भोग-विलास, भव्यता और अलंकरण की प्रवृत्तियों से सना हुआ था। यह प्रवृत्ति वैभव सम्पन्न वर्ग में ठूँस-ठूँस कर भरी हुई थी । सभी शासक और सामन्त लोग शिल्पकारों, संगीतकारों, चित्रकारों, कवियों आदि कलाविदों को अपने आश्रय में रखते थे और उन्हें दान देकर प्रतिष्ठित किया जाता था । इसी कारण रीतिकाल का अधिकांश साहित्य शासकों के राजदरबारों के आश्रय में ही लिखा गया है । भोग-विलास में मग्न शासकों को आत्मप्रशंसा की लालसा और शृंगारिक मनोरंजन की प्यास थी और कवियों को प्रतिष्ठा और धन की भूख थी । अतः केशव, भूषण, पद्माकर, मतिराम, चिंतामणि, देव, भिखारीदास आदि कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्तियाँ लिखीं और शृंगारपूर्ण रचनाएँ लिखकर उनका मनोरंजन भी किया । इतना ही नहीं उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने नाम के स्थान पर आश्रयदाताओं का ही नाम लिखकर अपनी गुलामी भी परोक्षतः प्रस्तुत की । "केशवदास ने 'रसिक प्रिया' के प्रत्येक 'प्रभाव' के अन्त में 'इति श्रीमन्महाराजकुमार इन्द्रजीत विरचितायाम्', भिखारीदास ने 'काव्य निर्णय' के प्रत्येक 'उल्लास' के अन्त में 'इति श्रीसकलकलाधर वंशावतंस श्रीमन्महाराजकुमार श्री बाबू हिन्दूपति विरचिते काव्य निर्णये" मतिराम ने 'ललितललाम' के अन्त में भावसिंह और पद्माकर ने 'जगद्विनोद' के प्रत्येक प्रकरण के अंत में भगतसिंह की स्तुति की है ।"[2] इसके अलावा घनानंद, रसनिधि, बिहारी, बेनी, कृष्णकवि, बोधा आदि जैसे कवियों ने स्वच्छन्द प्रेमसंबंधी काव्य रचना करके अपने आश्रयदाताओं की तुष्टि की । रीतिकालीन अधिकांश रचनाएँ शृंगारपरक थीं । वैसे रीतिकालीन शृंगार साहित्य का मूल प्राकृत और संस्कृत की शृंगारिक मुक्तक रचनाओं में पाया जाता है । प्राकृत का संपूर्ण साहित्य अपने अद्‌भुत सौंदर्य के कारण संस्कृत कवियों के लिए अनुकरणीय रहा है ।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.282
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.256

संस्कृत में अनेक शृंगारशतकों की रचना हुई जिनमें नरहरि कवि कृत 'शृंगारशतक' महत्त्वपूर्ण है । रीतिकालीन शृंगार मन:स्थिति की इससे समानता दिखाई देती है । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार रीति-कवियों की प्रवृत्तियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है ।

1. प्रमुख प्रवृत्तियाँ और 2. गौण प्रवृत्तियाँ ।

प्रमुख प्रवृत्तियों में रीति-निरूपण और शृंगारिकता मुख्य प्रवृत्तियाँ थीं। रीति निरुपण इस काल में मुख्यत: तीन दृष्टियों से रीतिग्रंथों की रचना की गई । प्रथम दृष्टि रीति-कर्म की है । इसके परिचायक वे ग्रंथ हैं, जिनमें सामान्य रूप से काव्यांग-विशेष का परिचय कराना ही कवियों का उद्‌देश्य रहा है । अपने कवित्त्व का प्रदर्शन करना इनका उद्‌देश्य नहीं रहा । जसवन्तसिंह का 'भाषाभूषण', याकूबखां का 'रसभूषण', रसिक सुमति का 'अलंकारचन्द्रोदय', दलपतिराय बंशीधर का 'अलंकार रत्नाकर' गोविन्द का 'कर्णाभरण', दूलह का 'कविकुल कंठाभरण' आदि । द्वितीय प्रवृत्ति में रीति कर्म और कवि कर्म दोनों का समान महत्त्व रहा है । ग्रंथों में लक्षण और उदाहरण दोनों ही उनके रचयिता द्वारा रचित हैं तथा उदाहरणों में सरसता का विशेष ध्यान रखा गया है । चिंतामणि, भूषण, पद्माकर, कुलपति, ग्वाल, मतिराम, श्रीपति, दास, देव आदि के नीति-निरूपण विषयक ग्रंथ इसी प्रकार के हैं । तृतीय प्रवृत्ति में कवियों ने सभी छन्दों की रचना काव्यशास्त्रीय नियमों से बँधकर की, लक्षणों को महत्त्व नहीं दिया । ये ग्रंथ प्राय: शृंगारपरक हैं । बिहारी, चंदन, भूपति, मतिराम आदि की सतसइयाँ नख-शिख वर्णन संबंधी ग्रंथ इस प्रवृत्ति के परिचायक हैं ।[1]

रीति निरुपण की समस्त अंत: प्रवृत्तियों का अध्ययन करते हुए डॉ. नगेन्द्र कहते हैं कि - "रीतिकाल के समस्त रीतिकवियों ने अपने ग्रंथों का निर्माण सामान्य पाठकों को काव्यशास्त्र का ज्ञान प्राप्त कराने के लिए किया है । अत: सुबोधता, सुकंठता और सरसता का ध्यान रखते हुए ही इनमें संस्कृत-काव्यशास्त्र में प्रचलित विभिन्न शैलियों का अनुकरण किया गया है । इन रचनाओं में सामान्यत: ध्वनि परवर्ती परम्पराओं के उन्हीं संस्कृत ग्रंथों को आधार बनाया गया है जो विवेचन की व्यवस्था और सुबोधता के कारण एक प्रकार से पाठ्‌यग्रन्थ बन चुके थे । इनके भीतर दिए गए लक्षणों का

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.303-304

ब्रजभाषा में अनुवाद करने का ही इन लोगों ने प्रयत्न किया है ।"[1]

शृंगारिकता: शृंगारिकता की प्रवृत्ति रीतिकवियों की कविता का प्राण है । इस प्रवृत्ति में स्वतंत्र अंतः प्रवृत्तियाँ नहीं थीं । परंतु एक ओर से काव्यशास्त्रीय बंधनों के निर्वाह के और दूसरी ओर से नैतिक बन्धनों की छूट और विलासी आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारण इस प्रवृत्ति में शृंगारिकता का प्रभाव अधिक रहा है । इनके अलावा राजप्रशस्ति या वीरकाव्य की प्रवृत्ति मूलतः अलंकार और छंदोविवेचन के ग्रंथों में ही देखने को मिलती है । वीरकाव्य की प्रवृत्ति में अलंकार निबद्ध राजविषयक रति का ही प्राधान्य है - उत्साह का प्रायः अभाव ही रहा है ।[2]

अनुवाद की दृष्टि से देखें तो जिस तरह पूर्वमध्यकाल में भागवत, महाभारत, रामायण, शिवपुराण आदि का आधार लेकर अनेक काव्य परम्पराओं का विकास हुआ उसी तरह उत्तरमध्यकाल में भी इस प्रकार की रचनाएँ बाढ़ की तरह उमड़ पड़ी । कवियों ने जैन पुराण परम्परा को और विकसित किया । डॉ. हरिश्चद्र वर्मा और डॉ. रामनिवास गुप्त के अनुसार जैनेन्द्रभूषण कृत नेमिनाथ पुराण, देवदत्त जैन कृत उत्तरपुराण, देवदत्त का चन्द्रप्रभपुराण, बख्तावरमल का नेमिनाथपुराण, धर्म देव और भूधरदास कृत पार्श्वपुराण, विजयकुमार का वर्धमान पुराण, लालचन्द के विमलनाथ पुराण और हरिवंश पुराण, इन्द्रजीत का श्रीमुनिसुव्रत पुराण, सेवाराम का शांतिपुराण आदि कृतियाँ जैन धारणा का आधार लेकर लिखी गईं । हिन्दी पुराणों में सरजूराम, रामपुरी, रामप्रसाद आदि अनेक कवियों ने जैमिनी पुराणों की रचना की । हम्मीर का ब्रह्माण्ड पुराण, दामोदर का मार्कण्डेय पुराण, भिखारीदास का विष्णुपुराण, गोकुलनाथ, गोपीनाथ एवं मणिदेव के हरिवंश पुराण आदि संस्कृत में रचित हिन्दू पुराणों के अनुवाद हैं । भागवत का आधार लेकर मंचित कवि ने कृष्णायन काव्य को अवधी भाषा में प्रस्तुत किया । गुमान मिश्र कृत कृष्ण चन्द्रिका तथा कृष्णदास कृत माधुर्य लहरी में कृष्ण का चरित्र दोहा-चौपाई शैली में प्रस्तुत किया गया है । अमरसिंह, कलीराम, प्राणनाथ, वीरबाजपेयी, आलम आदि कवियों ने सुदामा चरित नाम से अनेक रचनाएँ रचीं । भागवताश्रित मंगल और लीला काव्यों की

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.305
2. वही, पृ.307

रीतिकाल में भरमार थी । भक्तिकाल में वाल्मीकि-रामायण का आधार लेकर रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, हनुमन्नाटक आदि काव्यों की रचना की गई । रीतिकाल में भी रामायण को उपजीव्य मानकर रचे गए रामकाव्यों की विशाल संख्या मिलती है । गुरूगोविन्दसिंह का रामावतार, सोढी मिहिरबान की रामायण, कृष्णलाल का रामचरित्र, गुलाबसिंह की अध्यात्म रामायण और हरिसिंह की अध्यात्म रामायण तथा संतोषसिंह कृत वाल्मीकि रामायण, अद्‌भुत रामायण, अध्यात्म रामायण आदि अनेक अनूदित रूप हैं । इनके अलावा अनेक रामरसिक भक्तों ने रामायण का आधार लेकर रामकाव्यों की रचना की ।[1]

रामायण की तरह महाभारत का आधार लेकर रीतिकालीन अनेक कवियों ने अपनी रचना रचीं । अठारहवीं सदी में गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव ने महाभारत तथा हरिवंश पुराण के पद्यबद्ध अनुवाद किए । गिरिधरदास ने महाभारत से आधार लेकर जरासंघ काव्य लिखा । सबलसिंह चौहान ने दोहाचोपाई शैली में 'महाभारत भाषा' की रचना की । छत्रसिंह ने महाभारत की कथा को 43 अध्यायों में विजयमुक्तावली काव्य द्वारा प्रस्तुत किया । महाभारत के उपाख्यानों का आधार लेकर भी अनेक काव्य लिखे गए। सूरदास लखनवी कृत 'नल दमन', सेवाराम का 'नल दमयंती', रामचन्द्र, नरपति व्यास और भगवानदास कृत 'नलदमयन्ती प्रेमकाव्य', दलपतराय का 'श्रवणाख्यान', वृन्द की 'भारतकथा', मुरली कृत 'अश्वमेघ यज्ञ' आदि रचनाएँ महाभारत के विशेष प्रसंगों को आधार मानकर लिखी गई हैं । इसके अलावा रीतिकाल में रचित पौराणिक प्रबंध काव्यों का मूल रामचरित, कृष्णचरित, शिवपार्वती, प्रह्लाद, ध्रुव, सुदामा आदि है । महाभारत के पात्रों को आधार मानकर भी काव्य-रचना की गई । इनके अलावा भविष्यपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण आदि हिन्दूपुराण साहित्य और पार्श्वपुराण, महापुराण, शान्तिनाथपुराण, पद्मपुराण आदि जैन पुराणों का आधार लेकर भी काव्य रचनाएँ हुई हैं । वाल्मीकि रामायण, महाभारत और भागवत पुराण का इस परम्परा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है ।[2]

पौराणिक प्रबंध काव्यों के व्यापक प्रभाव के साथ-साथ रीतिकाल में

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.344-345
2. वही, पृ.346-347

गद्य लेखन की प्रवृत्ति भी बढ़ रही थी । ज्ञान के विभिन्न विषयों के पठन-पाठन के अलावा उन रचनाओं को जनसामान्य तक पहुँचाने का कार्य रचनाकारों ने अतिआवश्यक कार्य समझकर शुरू किया । हिन्दी भाषा जनभाषा का रूप ले रही थी इसलिए हिन्दी गद्य के माध्यम से संस्कृत में व्याप्त ज्ञानकुंज को यथाशक्ति जनजन तक ले जाने के प्रयास होने लगे । जनमानस की आस्थाओं के प्रेरणास्रोत-रामायण, महाभारत, पुराण आदि जो संस्कृत में रचे गए हैं उनका जनभाषा में सरलीकरण करने की अतिआवश्यकता महसूस की जा रही थी । अतः संस्कृत, प्राकृत, फारसी आदि भाषा के साहित्य का अनुवाद होने लगा ।

डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा और डॉ. रामनिवास गुप्त का कहना है कि रीतिकाल में अनूदित गद्य साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया । रामायण, महाभारत, हितोपदेश, भागवतपुराण, गरुड़पुराण, पद्मपुराण, नासिकेत महापुराण, आदिपुराण आदि अनेक ग्रंथों के अनुवाद गद्य में किए गए । इनमें रामहरि मिश्र की 'आइने अकबरी की भाषा वचनिका' तथा चाणक्य राजनीति, लल्लूलाल की राजनीति (हितोपदेश का अनुवाद) और प्रेमसागर, श्रीपति का 'माधव निदान', रामप्रसाद निरंजनी का 'भाषा-योग वसिष्ठ', दौलतराम का 'भाषा पद्मपुराण', कमोदानन्द का 'सूर्यसिद्धांत' सदल मिश्र का नासिकेतोपाख्यान तथा रामचरित्र, इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' आदि मुख्य रचनाएँ हैं ।[1]

इन रचनाओं के अलावा भी डॉ. नगेन्द्र अन्य अनेक रचनाओं को रीतिकालीन अनूदित गद्य की श्रेणी में प्रमुख स्थान देते हैं । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार रामहरि का 'विदग्ध माधव नाटक' (रूपगोस्वामी के संस्कृत-नाटक का छायानुवाद); सुरति मिश्र का 'वैताल पच्चीसी' (संस्कृत के वैताल पंचविंशतिका का छायानुवाद); देवीचन्द का 'हितोपदेश ग्रंथ महाप्रबोधिनी' (हितोपदेश का अनुवाद); वंशीधर के 'मित्र मनोहर' (हितोपदेश का अनुवाद); 'कथाविलास' (हितोपदेश-भोजप्रबंध-अनुवाद); 'नासिकेत महापुराण' (नासिकेत पुराण-अनुवाद); 'गरूड़ पुराण' अनुवाद; पद्मपुराण के एक भाग का नाजर आनन्दराम कृत अनुवाद; दादूपन्थी अनाथदास का 'विचारमाला' (अनुवाद); लल्लूलाल के 'राजनीति' (हितोपदेश-अनुवाद); 'कीमिया शआदत' का

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.349

अनुवाद; 'कालयवन कथा' (महाभारत के शुकदेव-परीक्षित-संवाद का अनुवाद); 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' (अनुवाद, अनुवादक अज्ञात) आदि अनूदित ग्रंथ हैं ।[1]

इसके अलावा रीतिकाल में रचित खड़ीबोली-गद्य, अधिकांशत: टीकानुवाद के ही रूप में दिखाई देता है । अनूदित अन्य ग्रंथों का उल्लेख करते हुए डॉ. नगेन्द्र का मानना है कि 'भाषा उपनिषद्', 'भाषायोगवासिष्ठ', 'भाषा पद्म पुराण', 'आदिपुराण वचनिका', 'मल्लीनाथ चरित्र वचनिका', 'सुदृष्टि तरंगिनी वचनिका', 'हितोपदेश वचनिका' आदि खड़ीबोली के प्रमुख अनूदित ग्रंथ हैं । 'भाषा उपनिषद' तैत्तिरीयोपनिषद आदि बाईस उपनिषदों के फ़ारसी-अनुवाद का हिन्दी अनुवाद है । एशियाटिक सोसायटी, कोलकात्ता के संग्रह में सुरक्षित इस उपनिषद-अनुवाद की 107 बृहद् पत्रों की नागरी-प्रति में भाषा ब्रजभाषा मिश्रित और प्राय: अपरिमार्जित है । बसवावासी दौलतराम जैन कृत - 'भाषा पद्म पुराण' या 'पद्मपुराण वचनिका' राजस्थानी-ब्रजभाषा प्रभावित खड़ीबोली में प्राकृत की जैन राम कथा का व्याख्यानुवाद है । दौलतराम की दूसरी प्रसिद्ध वचनिका 'आदिपुराण वचनिका' है जो भगवान ऋषभदेव तथा राजा श्रेयांस के जन्मों की कथा से संबंधित जैन प्राकृत-ग्रंथ 'आदिपुराण' का व्याख्यानुवाद है । इनके अलावा 'पारस भाग' (महमूद गजाली री वात' - फ़ारसी के 'कीमिया शआदत' का सेवापन्थी अड्डनशाह और कृपाराम कृत अनुवाद), बीरबल कृत 'गीतानुवाद', पंडित कमोदानन्द द्वारा संस्कृत से अनूदित ज्योतिष ग्रंथ का अनुवाद - 'सूर्यसिद्धान्त, 'सिंहासन बत्तीसी' (छायानुवाद), 'विष्णुपुराणभाषा', 'श्रीमद्भागवत भाषा' आदि अनूदित ग्रंथ के रूप में पाए जाते हैं । अन्य ग्रंथों में 'भक्तमाल-टीका', 'भक्तमाल' का व्याख्यानुवाद है । पंडित योगध्यान मिश्र ने 'हातिमताई' का अनुवाद किया है । तारिणीचरण मिश्र द्वारा संस्कृत से अनूदित 'पुरुष-परीच्छा संग्रह' और दयाशंकर द्वारा अनूदित 'दायभाग' आदि उल्लेखनीय अनूदित ग्रंथ हैं ।[2]

हिन्दी के उपरांत रीतिकाल में दक्खिनी, राजस्थानी आदि अन्य भाषाओं में भी प्रचुर मात्रा में अनुवाद-कर्म की व्यापक प्रवृत्ति देखने मिलती

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.407
2. वही, पृ.410

है । चूँकि हिन्दी साहित्य के विकासक्रम की महत्त्वपूर्ण कड़ियों में इन्हें भी शामिल किया जाता है, अतः इनमें हुए अनुवादों का भी हिन्दी साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । इसलिए इसी क्रम में दक्खिनी राजस्थानी आदि में हुए अनुवादों का भी उल्लेख आवश्यक तथा उचित है । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "रीतिकाल में दक्खिनी में पूर्वपरंपरा के अनुसार सूफ़ी तथा इस्लामी धार्मिक ग्रंथों का भाष्य अनुवाद अधिक हुआ । इनमें मीरां याकूब कृत 'शमायलुल अतकिया' तथा 'दलायलुल अतकिया' नामक ग्रंथों के अनुवाद; मोहम्मद वलीउल्ला कादिरी द्वारा 'मारिफतुस्सुलूक' का अनुवाद आदि धार्मिक अनूदित रचनाएँ हैं । अज्ञातनामा लेखकों की 'तूतीनामा', 'अनवारे सुहेली', 'किस्सा-ए-गुलो हुरमुज़' शीर्षक अनूदित कथात्मक पुस्तकों के अलावा 'सित्तए शम्सिया', 'रिसाला ज़र्रे सकीन' आदि विज्ञान संबंधी अनूदित ग्रंथ उल्लेखनीय हैं । जबकि 'भागवत', 'गरुड़पुराण', 'योग-वासिष्ठ', 'पंचतंत्र', 'सिंहासन बत्तीसी', 'वैताल पच्चीसी' आदि कथात्मक कृतियों के राजस्थानी में अनुवाद हुए ।"[1]

इस प्रकार रीतिकाल में सैद्धांतिक दृष्टि से भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा को हिन्दी में स्थापित करते हुए प्रयोग एवं विवेचनों द्वारा रीतिकवियों ने हिन्दी साहित्य की समृद्धि में विशेष योगदान दिया है । बिहारी, वृंद, गिरधर आदि अनेक कवियों ने अनुवाद के माध्यम से हिन्दी साहित्य के विकास में अपना-अपना अद्वितीय योगदान दिया है । इन कवियों के अनुवादक रूप का निम्नलिखित परिचय दिया जा सकता है :

4.1.1 वृन्द : एक अनुवादक :

कवि वृन्द का काल 1643-1723 तक का माना जाता है । इनके पूर्वज बीकानेर के रहनेवाले शाकद्वीपी भोजक ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम श्री रूपजी था, जो बाद में मेड़ते में आकर बसे । मेड़ते में ही वृन्द का जन्म हुआ था । इनका पूरा नाम श्री वृन्दावन रूपजी था । बचपन से ही सुशील, गंभीर और तेजस्वी वृंद को इनके पिता ने विद्या अध्ययन के लिए काशी भेजा । काशी में इन्होंने तारा पंडित से गणित, वेदान्त, साहित्य, दर्शनशास्त्र, व्याकरण आदि का ज्ञान प्राप्त किया और साथ ही काव्य सर्जन भी सीखा । काशी से लौटने पर मेड़ते में इनका भारी सम्मान हुआ तथा

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.411-412

जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह ने कुछ भूमि इन्हें प्रदान की । उन्हीं के माध्यम से औरंगजेब के वज़ीर नवाब मुहम्मद ख़ाँ से इनका परिचय हुआ और बादशाह के दरबार में इनका प्रवेश हुआ । ऐसा कहा जाता है कि औरंगजेब ने इन्हें एक समस्या दी - पयोनिधि पैर्‌यो चाहे मिसिरी की पुतरी - वृंद ने उसी समय उसकी पूर्ति की, जिस पर प्रसन्न होकर औरंगजेब ने ख़ूब सारा धन देकर अपना दरबारी कवि बनाया । इसके बाद उसने इन्हें अपने बड़े पुत्र शहज़ादा मुअज्ज़म तथा पौत्र अज़ीमुस्सम्म का शिक्षक नियुक्त किया । वृंद उसके साथ उड़ीसा और बंगाल गए और उसके आग्रह से बहुत-सी रचनाएँ रचीं । सन् 1707 के लगभग किशनगढ़ के महाराज राजसिंह ने वृंद को अपना गुरु माना और अच्छी जागीर देकर इन्हें किशनगढ़ में बसाया ।[1]

वृंद की रचनाओं में 'बारहमासा', 'भावपंचाशिका', 'नयनपचीसी', 'पवनपचीसी', 'शृंगारशिक्षा', 'यमक सतसई', 'वृंद सतसई', 'वचनिका', 'सत्यस्वरूप', 'रूपसिंह की वार्ता' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । 'वृन्द सतसई' रचना के कारण लोग इन्हें जानने लगे । सतसई में इनके नीतिपरक दोहे हैं जो प्राय: जीवन के अनुभव और भारतीय संस्कृति पर आधारित हैं । इनकी रचनाओं में संस्कृत के नीतिकाव्यों का प्रभाव अधिक रहा है । कुछ रचनाएँ ऐसी हैं जिनमें मूल भाव तो संस्कृत से लिया गया है तथा लोकजीवन के उदाहरण उसमें देकर सायास मौलिकता लाने का प्रयत्न किया है । लेकिन कुछ रचनाएँ पूर्णत: शब्दानुवाद ही प्रतीत होती हैं । वृंद ने अपनी रचनाओं में संस्कृत के अनेक श्लोकों, सुभाषितों आदि का भाव लेकर, छाया लेकर सचेष्ट अनुवाद किया है । डॉ. विनीता ने अपने एक प्रकाशित लेख (अनुवाद, पत्रिका अंक 96-97; जुलाई-दिसंबर 1998) में कवि वृंद के अनुवाद कर्म पर प्रकाश डाला है, जो इस प्रकार है :

हितोपदेश के एक श्लोक :

दरिद्रान भर कौन्तेय । मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं । नीरूजस्य किमौषधैः ।।

हितोपदेश 1/420

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.350-351

वृन्द ने इसका शब्दानुवाद किया है :

दान दीन को दीजिए, मिटे दरिद्र की पीर ।
औषधि वाको दीजिए, जाके रोग सरीर ।।

वृन्द सतसई 484

पंचतंत्र के एक अन्य श्लोक -

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।
पयः पानं भुजंगाम केवलं विषवर्द्धनम् ।।

पंचतंत्र अध्याय 1, श्लोक 420

इसका वृन्द ने शब्द प्रति शब्द रखकर सचेष्ट अनुवाद किया है :

मूरख को हित के वचन सुनि उपजतु है कोप ।
साँपहि दूध पिवाइये, ज्यों केवल विष ओप ।।

वृन्द सतसई दोहा 702

वृन्द ने यहाँ 'मूर्ख' के लिए 'मूरख', 'उपदेश' के लिए 'हित के वचन' 'प्रकोप' के लिए 'कोप', 'पय' के लिए 'दूध', 'पानं' के लिए 'पिवाइए', 'भुजंगाम' के लिए 'साँप', 'केवलं' के लिए 'केवल', 'विष' के लिए 'विष' आदि रखकर शब्दानुवाद किया है ।

एक ही पुष्पित, सुगंधित सुंदरवृक्ष से जैसे सारा वन सुगंधित हो जाता है उसी प्रकार एक सुपुत्र से सारा कुल सुशोभित होता है इस बात को चाणक्य ने निम्नलिखित श्लोक द्वारा व्यक्त किया है :

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगंधिता ।
वासितं तद्वनं सर्व सुपुत्रेण कुलं यथा ।।

चाणक्य नीति दर्पण अध्याय 3, श्लोक 14

इसी बात को वृन्द ने अपने दोहे में शब्दशः अनुवाद करके व्यक्त किया है ।

एकहि भले सुपुत्र तें, सब कुल भलो कहात
सरस सुवासित बिच्छ तें, ज्यों बन सकल बसात ।।

वृन्द सतसई दोहा 532

यहाँ वृन्द ने 'एकेनापि' के लिए 'एकहि', 'सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगंधिता' के लिए 'सरस सुवासित बिच्छ', 'वासितं' के लिए 'बासत', 'वनं' के लिए 'बन', 'सर्व' के लिए 'सकल', 'सुपुत्र' के लिए 'सुपुत्र', 'कुल' के लिए 'कुल', 'यथा' के लिए 'ज्यों' रखकर शब्दानुवाद किया है ।

चाणक्य ने अन्यत्र कहा है कि "व्यक्ति गुणों से उत्तम होता है, ऊँचे स्थानों पर बैठने से नहीं । जैसे महल के शिखर पर बैठने से कौआ गरुड़ नहीं बन जाता ।" इस बात को चाणक्य ने निम्नलिखित श्लोक में व्यक्त किया है :

गुणैरुत्तमताम याति नोच्चैरासनसंस्थिता: ।
प्रादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुड़ायते ॥

चाणक्य नीति दर्पण अध्याय 16, श्लोक 6

इसी बात को वृन्द ने अपने दोहे में पिरोया है । यथा :

ऊँचे बैठ न लहै, गुन बिन बड़पन कोई ।
बैठो देवल-सिखर पर, वायस गरुड़ न होई ॥

वृंद सतसई दोहा 169

ज्ञान की महत्ता को समझाते हुए संस्कृत की एक सूक्ति है :

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति ।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात् ॥

इस सूक्ति का वृन्द ने जानबूझ कर पूर्ण होशोहवास में अनुवाद किया है :

सरसुति के भंडार की बड़ी अपूरब बात ।
ज्यों-ज्यों खरचै त्यों-त्यों बढ़े बिन खरचे घटि जात ॥

वृन्द सतसई दोह 606

यहाँ वृन्द ने शब्दानुवाद किया है । 'अपूर्वः' के लिए 'अपूरब', 'कोशोऽयं' के लिए 'भंडार', 'भारति' के लिए 'सरसुति' (सरस्वती), 'व्ययतो' के लिए 'खरचै' 'वृद्धि' के लिए 'बढ़ै', 'क्षय' के लिए 'घटि', 'संचयात' के लिए 'बिन खरचे' रखकर शब्द प्रति शब्द अनुवाद किया है । इसी प्रकार भर्तृहरि के नीतिशतक में मनस्वी पुरुषों की बात कही है : मनस्वी पुरुषों की कुसुम के गुच्छों के समान दो ही वृत्तियाँ होती हैं या तो वे सबके सिर पर विद्यमान रहते हैं या वन में ही विशीर्ण हो जाते हैं । यथा :

कुसुमस्तबकस्येव द्वे वृत्तिर्मनस्विनः
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य, शीर्यते वन एव वा ॥

भर्तृहरि कृत नीतिशतक, पद्य 33

इसका वृन्द ने निम्नलिखित अनुवाद किया है :

द्वैही गति बड़ेन की, कुसुम मालती भाय ।
केसव के सिर पर रहैं कै बन माँहि विलाय ॥

छंद सतसई, दोहा 475

वृंद ने यहाँ पूर्णतः शब्दानुवाद किया है परन्तु 'सर्वलोकस्य शीर्यते' की जगह 'केसव के सिर पर' तथा कुसुम के साथ मालती जोड़कर इस अनुवाद कर्म को छिपाने के लिए मौलिकता लाने का सचेष्ट प्रयास किया है ।

वृंद ने चाणक्य के एक अन्य नीति विषयक श्लोक का वृंद सतसई में शब्दानुवाद किया है । यथा :

चाणक्य : **यथा चतुभि कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।**

तथा चतुभिः पुरुषः परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ।।

- चाणक्य नीति दर्पण, अध्याय 5, श्लोक 2

वृंद : **सील-करम-कुल-श्रुत चतुर, पुरुष-परिच्छा जान ।**

ताड़न-छेदन-कस-तपन, इनतें कनक पिछान ।।

- वृंद सतसई, दोहा 544

चाणक्य ने अन्यत्र नीतिशतक में कहा है कि अनेक प्रकार की शिक्षा दिए जाने पर भी दुर्जन साधु नहीं बन सकता । नीम के वृक्ष को दूध और घी से सींचा जाए तब भी वह मधुरता को प्राप्त नहीं कर सकता ।

चाणक्य -

न दुर्जनः साधुदशामुवैति बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः ।

आमूलसिक्तः पयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ।।

- चाणक्य नीति दर्पण, अध्याय 11, श्लोक 6

उपरोक्त श्लोक का वृंद ने भावानुवाद किया है -

दुष्ट न छोड़ै दुष्टता, कैसेहुँ सिख देत ।

धोये हूँ सौ बेर के, काजर होय न सेत ।

- वृंद सतसई, दोहा 71

इस श्लोक में वृंद ने नीम का उदाहरण न लेकर काजल का उदाहरण देकर अनुवाद में मौलिकता भरने की चेष्टा की है ।

संस्कृत की एक अन्य सुप्रसिद्ध सूक्ति -

कांचः कांचनसंसर्गाद् धत्ते मारकतीं द्युतिम ।।

का भाव विस्तार करके अपनी रचना में उसे शामिल कर लिया है ।

वृंद -

होय सुद्ध मिटि कलुषता सत्संगति को पाय ।

जैसे पारस को परसि, लोह कनक ह्वै जाय ।।

वृंद सतसई दर्पण, दोहा 119

इस प्रकार कवि वृंद के दोहों पर संस्कृत के नीतिपरक काव्यों का अधिक प्रभाव है । उपरोक्त उदाहरणों के अलावा अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं और कहा जा सकता है कि वृंद एक कुशल अनुवादक थे । और इस तरह उनकी रचनाओं से हिन्दी साहित्य और अधिक समृद्ध हुआ ।

4.1.2 गिरिधर कविराय : एक् अनुवादक

गिरिधर कविराय का रचनाकाल 1743 ई. के बाद का माना जाता है।[1] इनकी रचनाओं पर उपनिषदों, वेदान्त, नीतिकाव्य आदि का अत्यधिक प्रभाव है । डॉ. नगेन्द्र का कहना है कि "व्यवहार और नीति से सम्बद्ध कुंडलियाँ लिखकर इन्होंने जितनी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है, उतनी प्रसिद्धि रीतिकाल का कोई अन्य नीतिकाव्यकार नहीं पा सका ।"[2] अपनी सहज अभिव्यक्ति, यथार्थवादिता एवं अनुभव युक्त होने के कारण इनकी कुंडलियाँ लोकप्रिय रही हैं । विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों से कुंडलियों का संग्रह श्री किशोरीलाल गुप्त ने 'गिरिधर कविराय ग्रन्थावली' में संपादित किया है ।

गिरिधर कविराय ने मनुष्य को क्या नीति अपनानी चाहिए तथा समाज में अन्य के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, इन तथ्यों को अपनी सीधी-सादी, सरल भाषा में समझाया है । गिरिधर की कुछ कुंडलियों में 'गिरिधर कविराय' और कुछ कुंडलियों में 'साईं' शब्द आते हैं । कुछ विद्वानों का मानना है कि "'गिरिधर कविराय' जिस कुंडली में आता है वह तो स्वयं गिरिधर कविराय ने ही रच है परंतु जिस कुंडली में 'साईं' शब्द आता है वह कवि गिरिधर की पत्नी ने रची होगी ।"[3]

गिरिधर कविराय की रचनाओं में अनुवाद-कर्म को उजागर करते हुए डॉ. विनीता ने सोदाहरण[4] अध्ययन प्रस्तुत किया है जिसका कुछ अंश इस प्रकार है :

सामान्य व्यवहार एवं नीति से संबंधित कुंडलियों में तथ्यवक्ता पद्यकार गिरिधर कविराय के जीवन का अनुभव निहित है । ये कुंडलियाँ अधिकांशतः तो लोकजीवन से गृहीत हैं परन्तु कुछ कुंडलियाँ ऐसी भी हैं जिनमें संस्कृत के नीति श्लोकों से भाव ग्रहण किया है । उदाहरण के तौर पर भर्तृहरि के एक पद्य में धन की तीन गतियाँ बताई गई हैं : दान, भोग और नाश । जो व्यक्ति धन का न दान करते हैं, न भोग करते हैं उनकी तीसरी ही गति होती है -

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.394
2. वही
3. वही, पृ.395
4. अनुवाद पत्रिका, अंक 96-97, जुलाई-दिसंबर 1998 में प्रकाशित लेख 'संस्कृतनीति साहित्य के हिन्दी अनुवादक', डॉ. विनीता, पृ.10-11

मर्तृहरि - दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।

यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।।

भर्तृहरिकृत नीतिशतक, पद्य 43

गिरिधर कवि ने इस पद्य का पूर्णतः शब्दानुवाद किया है -

गिरिधर - कह गिरिधर कविराय, चरण त्रै धन के गायो ।

दान भोग बिन, नास होत, जो दियो न खायो ।।

गिरिधर कविराय ग्रंथावली, संपादक किशोरीलाल गुप्त, कुंडली, 122

यहाँ गिरिधर कविराय ने शब्दशः अनुवाद किया है ।

संस्कृत की एक सूक्ति - भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम् ।

इसका गिरिधर कवि राय ने अपनी कुंडली में शब्द प्रति शब्द रखकर सचेष्ट अनुवाद किया है यथा :

गिरिधर कवि - अवश्यमेव भोक्तव्य है, कृत कर्म सुमासुम जोम ।

कुंडली 108

पूर्णतः शब्दानुवाद के अतिरिक्त गिरिधर कवि ने कुछ कुंडलियाँ ऐसी भी रची हैं कि जिनमें संस्कृत के श्लोक का भावमात्र ग्रहण करके इतने सरस और मनोहारी रूप में अनुवाद किया है कि उससे कवि की सहज प्रतिभा निखर उठी है ।

संस्कृत सुभाषित - काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिक काकयो ।

वसन्त समये प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ।।

सुभाषितरत्नभंडागारम 225/120

गिरिधर कवि ने इस सुभाषित का भाव ग्रहण करके अपनी कुंडली की रचना को अधिक मौलिक बनाने का प्रयत्न किया है, यथाः

गुण के गाहक सहस नर, बिन गुण लहै न कोय ।

जैसे काग कोकिला, शब्द सुनै सब कोय ।।

गिरिधर कविराय ग्रंथावली, कुंडली 27

इसी प्रकार चाणक्य नीति के एक श्लोक का गिरिधर कविराय ने इस प्रकार अनुवाद किया है कि अनूदित कुंडली भी मौलिक रचना लगती है । यथाः

चाणक्य - मनसा चिन्तितं कार्यं, वचसा न प्रकाशयेत् ।

मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं कार्ये चापि नियोजयेत ।।

चाणक्य नीति दर्पण, अध्याय 2, श्लोक 7

गिरिधर कविराय -

साईं अपने चित्त की भूलि न कहिए कोई ।

तब लगि मन में राखिए, जब लग कारज होई ।।

गिरिधर कविराय ग्रंथावली, कुंडली 72

इस प्रकार गिरिधर कविराय ने अनुवाद के माध्यम से अपनी अनेक कुंडलियों की रचना की और अपनी इन कुंडलियों के लिए वे सर्वप्रसिद्ध भी हुए हैं । रीतिकाल में नीतिविषयक कुंडलियों की रचना केवल दो ही कवियों ने की थी - एक गिरिधर कविराय और दूसरे दीनदयाल गिरि ने ।

4.1.3 दीनदयाल गिरि : एक अनुवादक :

दीनदयाल गिरि का जन्म आचार्य शुक्ल के अनुसार 1802 ई. में काशी के गायघाट नाम के मुहल्ले में हुआ था । कहा जाता है कि ये मथुरा जिले के बरसावा गाँव के महात्मा थे । बाबा दीनदयाल गिरि गोसाई जाति के थे । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "लौकिक विषयों पर इनकी अन्योक्तियाँ नीति-साहित्य में मूर्धन्य स्थान रखती हैं । 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' नामक ग्रंथ की रचना की । इनकी रचनाओं में सहृदयता और भावुकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है ।"[1] उन्नीसवीं सदी के आरंभ के मेधावी नीति कवि दीनदयाल गिरि कुशल अनुवादक थे । प्रत्यक्ष रूप से उपदेश न देकर किसी अन्य वस्तु या कथा के द्वारा उपदेश देने की संस्कृत में एक परंपरा देखने मिलती है । इस परंपरा के अंतर्गत रचित रचनाएँ अन्यापदेशिक नीतिकाव्य कहलाती हैं । डॉ. विनीता के अनुसार "संस्कृत में इस प्रकार की प्रथम रचना भल्लट कृत 'भल्लट शतक' (नवीं सदी) है, इसके अलावा नीलकंठ दीक्षित का 'अन्यापदेश शतक' और पंडितराज जगन्नाथ का 'भामिनीविलास' अन्यापदेशिक नीति काव्य हैं ।"[2]

डॉ. विनीता नें अपने एक अध्ययन[3] में दीनदयाल गिरि के अनुवाद कर्म पर प्रकाश डाला है जो निम्नलिखितानुसार है :

डॉ. विनीता के अनुसार हिन्दी में सन्त साहित्य में यद्यपि अन्योक्तिपरक नीति कथन मिलते हैं परंतु वे संस्कृत के इन अन्यापदेशिक नीति काव्यों की परंपरा को पुनःजीवित करने का एक सत्प्रयास कहा जा सकता है ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.395
2. अनुवाद पत्रिका, अंक 96-97, जुलाई-दिसंबर 1998 में प्रकाशित लेख 'संस्कृतनीति साहित्य के हिन्दी अनुवादक', डॉ. विनीता, पृ.11
3. वही, पृ.11-12

'भामिनीविलास' के प्रथम प्रास्ताविक विलास में जिस प्रकार पंडितराज जगन्नाथ ने रसाल, भ्रमर, हंस, कूप, कोकिला, केतकी, पुष्प आदि के माध्यम से परोक्ष रूप में नीतिकथन कहे हैं उसी प्रकार दीनदयाल गिरि ने भी रसाल, भ्रमर, करील, पलाश, चंदन, पुष्प, चातक, हंस, शुक, सिंह, गज, बादल, चंद्र आदि को संबोधित करके परोक्ष रूप में नीतिकथन कहे हैं । इसके अलावा इनकी एक अन्य रचना 'दृष्टांत तरंगिनी' है जिसमें संस्कृत के नीतिपरक श्लोकों का अधिकांशतः शब्दानुवाद ही किया गया है, कहीं-कहीं भावानुवाद भी किया गया है । उदाहरण के लिए चाणक्य नीति दर्पण के एक श्लोक में दुर्जन के स्वभाव के बारे में कहा गया है -

चाणक्य - न दुर्जनः साधुदशामुपैति बहुप्रकाररैरपि शिक्ष्यमाणः ।
आमूलसिक्तः पयसा धृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ।।

चाणक्य नीती दर्पण, अध्याय 11, श्लोक 6

दृष्टांत तरंगिनी में दीनदयाल गिरि ने शब्दानुवाद किया है -

दीनदयाल गिरि -किजै सत उपकार को खल मानै नहि कोय ।
कंचन घट पै सींचिए नींब न मीठो होय ।।

दृष्टान्त तरंगिनी, दोहा-37

पंचतंत्र के एक श्लोक में मानव स्वभाव को अपरिवर्तनशील मानते हुए दृष्टांत दिया गया है कि पानी को अच्छी तरह गर्म किया जाए तब भी स्वभावतः पानी पुनः शीतल हो जाता है ।

पंचतंत्र - स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्तुमन्यथा ।
सुतप्तमपि पानीय पुनर्गच्छति शीतताम ।।

पंचतंत्र 1/280

पंचतंत्र के इस श्लोक का दीनदयाल गिरि ने शब्दानुवाद किया है -

कीजै सत उपदेश को होय सुभाव न आन ।
दारु भार करि तपित जल सीतल होत निदान ।।

दृष्टान्त तरंगिनी, दोहा 50

इसी प्रकार चाणक्य के एक श्लोक में सुपुत्र के विषय में कहा गया है कि कुल को प्रकाशित करने के लिए सौ निर्गुणी पुत्रों की अपेक्षा एक गुणवान पुत्र ही पर्याप्त है, जैसे एक चन्द्रमा ही अन्धकार को दूर करता है, सहस्रों तारे नहीं -

चाणक्य - एकोऽपि गुणवान पुत्रो, निर्गुणेन शतेन किम् ।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च ताराः सहस्रशः ।।
चाणक्य राजनीतिशास्त्र 7/59

उपरोक्त इस श्लोक का दीनदयाल गिरि ने शब्द प्रति शब्द रखकर सचेष्ट अनुवाद किया है -

कुलहि प्रकासै एक सुत, नाहिं अनेक सुत निन्द ।
चन्द एक सब तम हरै, नहिं उडगन के वृन्द ।।
दृष्टान्त तरंगिनी, दोहा 82

इस प्रकार दीनदयाल गिरि ने अपनी रचनाओं में संस्कृत के अनेक श्लोकों का अनुवाद ही कर दिया है । उन्होंने पूर्णतः शब्दानुवाद भी इतनी कुशलतापूर्वक किया है कि इससे न तो मूलभाव नष्ट ही हुआ है और न ही अंधा अनुकरण ही दिखाई देता है ।

4.1.4 महाराजा जसवंतसिंह : एक अनुवादक :

मारवाड़ के राजा गजसिंह के द्वितीय पुत्र जसवंतसिंह (1626-1679) को अपने पिता की मृत्यु के बाद बारह वर्ष की बाल-आयु में ही राज्य-कार्यभार संभालना पड़ा । शाहजहाँ और औरंगजेब के शासन-काल में मुगल दरबार और उसकी राजनीतिक गतिविधियों में जसवंतसिंह विशेष सक्रिय रहे थे। कुशल राजनीतिज्ञ एवं कुशल शासक होने के साथ-साथ ये साहित्यकार तो थे ही, उपरान्त इन्हें दर्शनशास्त्र के प्रति भी विशेष रुचि थी । इसके अलावा ये महान् योद्धा थे और औरंगजेब की सेना में सेनापति थे ।[1] अनेक कवि एवं पंडितों को इन्होंने आश्रय दिया था । अलंकार विषयक ग्रंथ 'भाषा-भूषण' के अलावा इन्होंने 'अपरोक्ष सिद्धान्त', 'अनुभव प्रकाश', 'सिद्धान्तसार', 'सिद्धान्त बोध', 'आनन्दविलास' आदि अध्यात्म विषयक ग्रंथों की रचना भी की । इसके अलावा संस्कृत के 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक का ब्रजभाषा में पद्यानुवाद भी किया। 'भाषाभूषण' को छोड़कर शेष सभी ग्रंथों का विषय दर्शन ही रहा है । 'भाषाभूषण' (चन्द्रालोक शैली में सूर दोहों का ग्रंथ) पाँच प्रकाशों में विभक्त करके लिखा गया ग्रंथ है जिसमें नायक-नायिका भेद, हावभाव, अर्थालंकारों एवं छेक, लाट और तीनों वृत्तियों के अनुसार अनुप्रास के साथ यमक का वर्णन यमकानुप्रास के नाम से किया गया है । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.272

"अलंकारों के नामों तथा उनके क्रम और विवेचन को देखकर यह सहज ही कहा जा सकता है कि इसकी रचना के लिए जसवंतसिंह ने 'कुवलयानन्द' का ही आश्रय लिया है । 'चन्द्रालोक', 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण' आदि से भी प्रभाव ग्रहण किया है । लक्षण-उदाहरणों में कतिपय 'कुवलयानन्द' के अनुवाद और शेष इसके तथा अन्य मूल ग्रंथों के छायानुवा हैं ।"[1]

रीतिबद्ध कवि-आचार्य के रूप में सुप्रसिद्ध महाराजा जसवंतसिंह के कृतित्व का एक अन्य श्लाघनीय पहलु अनुवादकार्य है । डॉ. चन्द्रमोहन रावत के अनुसार महाराजा जसवन्तसिंह ने संस्कृत-साहित्य के तीन अनुपमेय ग्रंथों का ब्रजभाषा में अनुवाद किया है - (1) प्रबोधचन्द्रोदय (2) श्रीमद् भगवद्गीता और (3) पद्मपुराणान्तर्गत 'गीतामहात्म्य' । डॉ. चन्द्रमोहन रावत का मानना है कि "जसवंतसिंह ने अनुवाद के निमित्त ऐसी कृतियों को चुना जो अपने शाश्वत एवं कालजयी मूल्यों-स्थापनाओं के लिए प्रत्येक युग में शताब्दियों से समादृत हैं । इन ग्रंथों का अनुवाद - हेतु चयन, प्रकारांतर से यह भी प्रतिपादित करता है कि जसवन्तसिंह तद्युगीन भोगविलास एवं राग रंगमय परिस्थितियों में भी रुचि-परिष्कार तथा पथ-प्रदर्शक का कार्य कर रहे थे ।"[2]

संस्कृत भाषा में ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कृष्णमिश्र ने आध्यात्मिक ज्ञान और भक्ति से सम्पन्न 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक नाट्य-रूपक की रचना की थी। जसवंतसिंह ने इस नाट्य-रूपक का अनुवाद 'प्रबोधनाटक' के नाम से किया है । मूल नाटक के भावों को संक्षिप्त में अनूदित किया है । डॉ. चन्द्रमोहन रावत ने कृष्णमिश्र कृत 'प्रबोधचन्द्रोदय' और जसवंतसिंह कृत 'प्रबोधनाटक' के बीच संबंध स्थापित करते हुए कुछ विशेषताओं पर भी गौर किया है यथा :

1. मिश्र की कृति 'प्रबोधचन्द्रोदय' और जसवंतसिंह द्वारा अनूदित 'प्रबोधनाटक' में प्रारंभ करने के स्तर पर ही पर्याप्त संक्षिप्तता दृष्टिगोचर होती है । मिश्रजी ने मूल में सूत्रधार और नटी के माध्यम से राजा गोपाल द्वारा प्राप्त विजय और कीर्ति वर्मा को विजित प्रदेश सौंपने तथा उनके पराक्रम का प्रथम नौ श्लोकों में अतिरंजित वर्णन किया है । जबकि इसके विपरीत जसवंतसिंह 'मंगलाचरण' के बाद सीधे ही मूल विषय पर आ गए हैं ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.335
2. अनुवाद पत्रिका, अंक 96-97, जुलाई-दिसंबर 1998 में डॉ. चन्द्रमोहन का लेख 'महाराजा जसवन्त सिंह', पृ.136

2. जसवंतसिंह ने मूल नाटक के नाम 'प्रबोधचन्द्रोदय' के स्थान पर अपने अनुवाद का शीर्षक 'प्रबोध' ही रखा है । यहाँ संक्षिप्तता से काम लिया गया है ।

3. जसवंतसिंह ने 'प्रबोधनाटक' में केवल एक पात्र 'विष्णुभक्ति' का नाम-परिवर्तन करके 'आसतिकता' रख दिया है । यहाँ 'आसतिकता' वही कार्य करती है जो मूल नाटक में 'विष्णुभक्ति' करती है ।

4. मूल संस्कृत नाटक में 'शांति' और 'करूणा' के संवाद के मध्य 'दिगंबर सिद्धांत', 'श्रद्धा', 'बुद्धागम कापालिक रूपधारी', 'सोम सिद्धान्त' आदि आते हैं परन्तु जसवंतसिंह ने अपने अनुवाद में इन मतों का विवादास्पद वार्तालाप अनूदित नहीं किया है ।

5. मूल नाटक छह अंको में विभक्त है । प्रत्येक अंक के 'प्रारंभ' और 'अंत' का संकेत है जबकि जसवन्तसिंह ने अपने अनुवाद में कहीं भी अंको द्वारा नाटक का विभाजन नहीं किया है फिर भी इससे कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आई है ।

6. जसवन्तसिंह का अनुवाद मूल नाटक से समापन के स्तर पर भी अंतर लिए हुए है ।

जसवंतसिंह की अनुवादित रचना 'प्रबोधनाटक' मूल 'प्रबोधचन्द्रोदय' से कतिपय स्थलों पर भिन्न होते हुए भी अत्यंत श्रेष्ठ अनुवाद है ।[1]

सेनापति महाराज जसवन्तसिंह ने महाभारत के युद्ध के समय श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को कही हुई गीता का भी गद्य एवं पद्य दोनों में अनुवाद किया है। गीता की गणना प्रस्थानत्रयी (उपनिषद, गीता और ब्रह्मसूत्र) में होती है इसलिए जसवंतसिंह ने अति गंभीरतापूर्वक गीता का अनुवाद किया है । उन्होंने 'भगवद्गीता टीका भाषा' गद्यानुवाद और 'भगवद्गीता भाषा दोहा' शीर्षक से पद्यानुवाद किया है । 'भगवद्गीता टीका भाषा' में गीता के मूल सूत्रों को उद्धृत करते हुए गद्य में अनुवाद किया गया है जबकि 'भगवद्गीता भाषा दोहा' में मूल सूत्र नहीं हैं बल्कि सीधे ही दोहों की रचना कर दी गई है । डॉ. चन्द्रमोहन रावत ने इन अनुवादों का उल्लेख अपने एक लेख (महाराजा जसवंतसिंह, अनुवादपत्रिका अंक 96-97) में किया है, यथा:

---

1. अनुवाद पत्रिका, अंक 96-97, जुलाई-दिसंबर 1998 में प्रकाशित लेख 'महाराजा जसवन्त सिंह', डॉ. चन्द्रमोहन रावत, पृ.137

गीता -

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेत्ता युयुत्सव: ।

मामक: पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ।

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 1, श्लोक 1

भगवद्गीता भाषा दोहा -

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र मैं मिले जुद्ध के साज ।

संजय मो सुत पांडवन कीने कौन जुकाज ॥

भगवद्गीता टीका भाषा -

धर्म को क्षेत्र ऐसो जो कुरुक्षेत्र ता विषै समवेत

एकत्र भए ऐसे जे मेरे अरू पांडु के पुत्र कैसे हैं

जुद की इच्छा धरत हैं हे संजय ते कहा करत भए ।

मूल श्लोक में 'धर्मक्षेत्र', 'कुरुक्षेत्र' शब्दों का साभिप्राय प्रयोग हुआ है, जिन्हें जसवन्तसिंह ने अपने गद्य-पद्य अनुवादों में बनाए रखा है । गीता के द्वितीय अध्याय में स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताए गए हैं -

गीता -

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वश: ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 2, श्लोक 68

महाराज जसवंतसिंह ने अपने अनुवादों में इसे इस प्रकार उतारा है -

भगवद्गीता टीका भाषा -

तातैं अर्जुन जिन इंद्रिन कौं

विषैं तैं रहित किए है ताकि प्रज्ञा स्थित है ।

भगवद्गीता भाषा दोहा -

जिन इंद्री जीती समै ठौर ठौर तैं आनि ।

विषै त्याग है जिन कियो थिरबुधि ताहि जु मानि ॥

गीता के तीसरे अध्याय में श्रीकृष्ण, अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि निष्काम-कर्म का मतलब कर्महीनता नहीं वरन् फल की आसक्तिहीनता है, कर्म तो अनिवार्य है । वे स्वयं का उदाहरण देते हैं कि त्रिभुवन् में मेरे लिए कुछ भी कर्तव्य नहीं है, न तो मुझे किसी पदार्थ का अभाव है और न ही कोई आवश्यकता, फिर भी मैं कर्म में तत्पर हूँ ।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता -

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, अध्याय 3, श्लोक 22

भगवद्‌गीता टीका भाषा -

देखि अर्जुन मेरे कछु तीनहूँ लोक में कर्तव्य नाँही अरू मेरे कुछ अनपायो नहीं अरू पावनौ ही नांही तऊ कर्म तो करत हों ।

भगवद्‌गीता भाषा दोहा -

मौकों कछु करनो नहीं तिहूँ लोक में काज

कछु न लह्यो लहिबो न कछु कर्म करत या साज ॥

पाँचवे अध्याय में श्रीकृष्ण स्पष्ट करते हैं कि कर्मयोगी को कर्म-सन्यास लेने की आवश्यकता नहीं है वह तो निष्काम कर्म योग से युक्त होकर देखते, सुनते, स्पर्श करते, सूँघते, भोजन करते, जाते, श्वास लेते, बोलते, त्यागते, ग्रहण करते हुए तथा आँखों को खोलते और मींचते हुए भी वह निरंतर मानता है कि इंद्रियाँ ही अपने विषयों में प्रवृत्त हो रहीं हैं और वह इनसे पृथक् है -

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता -

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।

पश्यंश्शृण्वन्स्पृशंजिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपंश्वसन् ॥

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन ॥

श्रीमंद्‌भगवद्‌गीता, अध्याय 5, श्लोक 8 और 9

इन दोनों श्लोकों को महाराजा जसवन्तसिंह ने भगवद्‌गीता 'टीका भाषा' में गद्यानुवाद इस प्रकार किया है -

जो जोगजुक्त है तत्त्ववित है सौ जद्यपि देखै है

सुनै है, परसे है गंध गहै है खाई है चले है सोवै है

स्वास लेवै है । बोले है छोड़े है ग्रहै है उनमेष करै है

निमेष करै है पै न कछु करै है ए इंद्री अपनै

अपने विषै मैं बरते है ऐसै यह जानै है ।

जसवन्तसिंह ने भगवद्‌गीता भाषा दोहा में इन दोनों श्लोकों का पद्यानुवाद बड़ी कुशलतापूर्वक किया है । यथा -

ज्ञानी कर्म जु करत है लेत किये नहिं मान ।
सूँघत देखत चलत पुनि सुनत छुवत हूँ जान ।।
सौवत जाग्रत चलत हूँ बोलत डारिहूँ देत ।
इंद्रिय विषयन सों पगी जानत है सम होत ।।

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय के योगारूढ़ लक्षण, जो न तो इंद्रियों में आसक्त होता है तथा न कर्मों में ही आसक्त होता है तथा सर्वसंकल्पत्यागी होता है - का गद्य और पद्य दोनों में जसवन्तसिंह ने सुंदर अनुवाद किया है । यथा -

श्रीमद्भगवद्गीता -

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ।

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 6, श्लोक 4

भगवद्गीता टीका भाषा -

जब विषै अरु कर्मन तैं जुदा होई सकल
संकलप को त्याग करै तब योगारूढ़ कहिए ।

भगवद्गीता भाषा दोहा -

विषयन सौं अरु कर्म सौं होइ प्रीति जब पूरि ।
सम संकल्पन कों तजै जोग रहै तब पूरि ।।

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के नौवें अध्याय के एक श्लोक में कहा गया है कि श्रद्धाहीन पुरुष बार-बार जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है, यथा -

श्रीमद्भगवद्गीता -

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्तमनि ।।

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 9, श्लोक 3

इस श्लोक का जसवन्तसिंह ने सटीकतापूर्वक अनुवाद किया है -

भगवद्गीता टीका भाषा -

या धर्मविषैं स्रधा न धरै हैं ऐसे जै
पुरुष तै मौकों न पावैं फिरि फिरि संसार मैं आवैं ।

भगवद्गीता भाषा दोहा -

करवे कों या धर्म के जाके श्रद्धा नाहिं ।
तें मोकों पावत नहीं डोलैं हैं भव मांहि ।

जसवन्तसिंह ने उस स्थल का अनुवाद भी अति कुशलता से किया जहाँ कृष्ण अर्जुन को अपने ऐश्वर्य के वर्णनोपरान्त कहते हैं कि तू केवल इतना जान ले कि अपने एक अंशमात्र से इस संपूर्ण जगत् को धारण करके मैं इसमें व्यक्त हो रहा हूँ - इस बात का उन्होंने सुंदर अनुवाद किया है।

श्रीमद्भगवद्गीता -

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टम्याहमिदम् कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।।

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 10, श्लोक 42

भगवद्गीता टीका भाषा -

अथवा अर्जुन ताकौं बोहुत जानै तैं
कहा प्रयोजन है यह जानि कै सब कुछ
मैं एक अंस तैं थॉम रह्यौ हौं ।

भगवद्गीता भाषा दोहा -

बहुत कहन तो सों कहों अर्जुन बात बनाइ ।
सभ जग अपने अंस सों मैं राख्यों ठहिराइ ।।

पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित 'जसवंतसिंह ग्रंथावली' में जसवन्तसिंह द्वारा अनुवाद की हुई रचनाओं के परीक्षण के क्रम में 'गीतामहात्म्य' नामक एक अन्य कृति प्राप्त होती है। यह ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखित 'पद्मपुराण' ग्रंथ के एक अंश 'गीतामहात्म्य' पर आधारित है। जसवंतसिंह ने मूल सामग्री का हार्द-गीता के महत्व की स्थापना को ज्यों का त्यों ही प्रतिस्थापित किया है। उन्होंने अध्याय आठ और नौ की कथाओं को परस्पर बदल दिया है। इसके उपरान्त उन्होंने प्रत्येक अध्याय की कथा में कुछ-न-कुछ परिवर्तन कर दिया है। इस प्रकार महाराज जसवंतसिंह द्वारा अनूदित रचनाएँ 'प्रबोधनाटक' जो भावानुवाद का श्रेष्ठ निदर्शन है, श्रीमद्भगवद्गीता के गद्य और पद्य में अनूदित ग्रंथ शास्त्रीय शब्दानुवाद के रूप में उदाहरण स्वरूप है और 'गीतामहात्म्य' ग्रंथ पुनःसृजन का उत्तमोत्तम नमूना है।

4.1.5 गुरु गोविन्दसिंह : एक अनुवादक :

सिक्खों के दसवें गुरु गुरुगोविन्दसिंह का जन्म 1669 ई. में हुआ था। वीर योद्धा और कुशल संगठन कर्ता के साथ-साथ वे काव्य मर्मज्ञ और निपुण कवि भी थे।[1] बचपन में ही उनके पिता गुरु तेगबहादुर ने उन्हें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.382

विभिन्न भाषाओं का ज्ञान प्रदान करने के लिए सभी भाषाओं के अलग-अलग विद्वानों को नियुक्त कर दिया था । इसी कारण संस्कृत, अरबी, फारसी, पंजाबी तथा ब्रजभाषा पर उनका एकाधिकार स्थापित हो गया । इस बहुभाषा ज्ञान ने उन्हें विविध ग्रंथों के अध्ययन के माध्यम से एक नई मानसिकता प्रदान की जिसके दर्शन हमें उनके अनूदित साहित्य में सहज रूप से हो जाते हैं ।[1]

जिस समय हिन्दू जनता मुगल शासकों के अत्याचारों से त्रस्त होकर त्राहि-त्राहि पुकार रही थी, उस युग में गुरु गोविन्दसिंह का जन्म हुआ था । अपनी राजनैतिक संकीर्णता, अदूरदर्शिता और धार्मिक कट्टरता के नुकीले हथियारों से हिन्दू प्रजा को औरंगज़ेब ने त्रस्त करना आरंभ कर दिया था । मुस्लिम धर्म अंगिकार करने के लिए हिन्दुओं को बाध्य किया जा रहा था । भारतीय प्रजा निरंतर शोषण की चक्की में पिसते-पिसते मूढ़ और निस्सहाय हो गई थी । राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना जैसे सक्षम बोधों पर प्रखर वेग से कुठाराघात हो रहा था । समाज की दशा दिन-प्रतिदिन शोचनीय होती जा रही थी । साथ ही सत्ताधारियों के पाश्विक अत्याचारों ने सामान्य जनता की सोच को पंगु कर दिया था । हिन्दू जनता अपने आपको निस्सहाय और असमर्थ पा रही थी । आत्मविश्वास नष्ट हो चुका था । ऐसी विकराल परिस्थिति में गुरु गोविन्दसिंह ने हिन्दुओं को एक दृढ़ सुरक्षा प्रदान की ।

ब्रजभाषा और गुरु मुखी लिपि को एक सूत्र में बाँधकर साहित्य-सृजन करनेवाले विद्वान गुरु गोविन्दसिंह का साहित्य-सृजन एक विशेष उद्देश्य को लिए हुए था । एक विशिष्ट चिंतन-मनन की प्रक्रिया से गुजरकर उन्होंने विचार सरणि का अनुगमन करके अपने विचारों को मूर्तरूप प्रदान किया था । उन्होंने अपने बचपन में रामायण, महाभारत, भागवत पुराण, विष्णु पुराण आदि का जो अध्ययन किया था, उसी को उन्होंने मूल रूप में ग्रहण करते हुए एक नवीन सृजनात्मक पूँजी का प्रणयन कर दिया । इस तरह मूल रचनाओं का सारानुवाद और भावानुवाद उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है । उन्होंने मानवजाति के कल्याण के अपने महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्कृत साहित्य के विविध धार्मिक एवं वीरभावपूर्ण प्रसंगों को एकत्रित करके कहीं उनका भावानुवाद तो कहीं सारानुवाद किया है ।[2]

---

1. अनुवाद पत्रिका, अंक 96-97, जुलाई-दिसंबर 1998 में प्रकाशित डॉ. ममता गुप्ता का लेख 'गुरुगोविन्द सिंह', पृ.118
2. वही

डॉ. ममता गुप्ता ने अपने एक अध्ययन में गुरु गोविन्दसिंह के अनुवाद कर्म पर प्रकाश डाला है । डॉ. ममता गुप्ता के अनुसार श्रीमद्भागवद पुराण के दसवें स्कंध में वर्णित कृष्ण-कथा के आधार पर गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी महत्वपूर्ण रचना - 'कृष्णावतार' की रचना की । कृष्णावतार के प्राय: सभी प्रसंग दसवें स्कंध के अनुरूप ही हैं । जैसे देवकी का जन्म, देवकी का विवाह, कृष्ण-जन्म, कृष्ण की बाल-लीलाएँ, उनका नामकरण, पूतना-वध, कालिय नाग दमन, बकासुर वध, ग्वालों एवं बछड़ों का ब्रह्माजी द्वारा चुराया जाना, गोवर्धन पर्वत को उठाना, रास मंडल, अक्रूर का मथुरा गमन, कंस-वध, रुक्मिणी विवाह आदि । सभी प्रसंगों में प्रधान घटनाओं का साम्य है । बीच-बीच में गुरु गोविन्दसिंह ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ घटनाओं के क्रम में परिवर्तन कर दिया है, कुछ घटनाओं को छोड़ दिया है तथा कुछ को नवीन रूप प्रदान कर दिया है ।[1] जैसे - कृष्ण के मुख में यशोदा को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के दर्शन होने के प्रसंग को भागवत पुराण के दशम स्कंध में विस्तारपूर्वक वर्णित किया है जबकि कृष्णावतार में गुरुगोविन्दसिंह ने इसी प्रसंग को संक्षिप्त भावानुवाद किया है ।

भागवत पुराण -

सा तत्र ददृशे-विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिश:
साहिद्विपाब्धिभगोलं सवाप्वग्नीन्दुतारकम् ।
ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नमस्वान्नियदेव च ।
वैकारिकार्णन्द्रियाणि मनो मात्रा मुणास्त्रय: ।।
स्तद्विचिव सह जीवकालस्वभाव कर्मकमलिडन भेदम् ।

कृष्णावतार -

देखहु आइ सभै मुहिको मुख मात कह्यो तब तात पसारयो ।
स्याम कहै तिन आनन में सभ ही धर मूरत बिस्व दिखारयो ।
सिंध धराधर अउ धरनी सब थांवल को पुर अउ पुर नागनि ।
अउर सभै निरखै तिह मै पुर बेद पड़े ब्रह्मागनि तागनि ।
रिद्ध अउ सिद्ध अउ आपने देख कै जान अभेव लगी पग लागनि ।।

कृष्णावतार 132, 133

---

1. अनुवाद पत्रिका, अंक 96-97, जुलाई-दिसंबर 1998 में प्रकाशित डॉ. ममता गुप्ता का लेख 'गुरुगोविन्द सिंह', पृ.118

भागवतपुराण -

तं खड्गपाणि विचरन्तमाशु श्येनं यथा दक्षिणसव्यमम्बरे ।
समग्रहीद्दुर्विषहोग्रतेजा यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ।
प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमन्वात् ।
तस्योपरिष्टात्सवयम् बजनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ।
तं संपरेतं विचकर्ष भूमो हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः ।।

भागवतपुराण दशमस्कंध 44/36-38

कंस के बालों को पकड़कर उसे जमीन पर घसीटने का वर्णन गुरु गोविन्दसिंह ने कृष्णावतार में किया है, यथा -

कृष्णावतार -

हरि कूद तबै रंगभूमहि ते निप्र थो सु जहाँ वह ही पगु धारयो ।
कंस लई कर ढाल सँभार कै कोप भरयो अस खेंच निकारयो ।
दउर दई तिस के तन पै हरि फाध गए अति दान संभारयो ।
केसन के गहिकै रिप कौ धरनी पर के बल ताहि पछारयो ।
गहि केसन ते पटक्यो धर सों गहि गोउन ते तब घीस दयो ।।

कृष्णावतार 851, 852

मार्कण्डेय पुराण में देवी महात्म्य एवं आराधना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । देवी द्वारा महिषासुर, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज तथा शुम्भ-निशुम्भ आदि दैत्यों के वध की कथा का ओजस्वी वर्णन किया गया है । 700 छंदों में वर्णित यह प्रसंग दुर्गासप्तशती के नाम से जाना जाता है । गुरु गोविन्दसिंह ने दुर्गा की इसी कथा के आधार पर 'चण्डी चरित्र उक्ति विलास', 'चण्डी-चरित्र द्वितीय' एवं 'चण्डी-दी-वार' नामक तीन काव्य-कृतियों की रचना की । कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

दुर्गासप्तशती -

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याव्यभिधीयते ।
योग निद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।
आस्तीर्य शेषमजत्कल्पान्ते भगवान प्रभुः ।
तदा द्वावसुरौ घोरो विख्यातौ मधु कैटभौं ।।
विष्णुकर्णभयलोद्भूतो हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतो ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ।।

दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनभ् ।

तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ।।

दुर्गासप्तशती 1/66-70

चण्डी चरित्र उक्ति विलास -

हरि सोइ रहे सज सैन तहा । जल जाल कराल बिसाल जहा ।

भयो नाम सरोज ते बिसुकरता । सुत मैल ते दैत रचै जुगता ।

मधु कैटभ नाम धरो तिनके । अति दीरध देह भए जिनके ।

तिन देख लुकेश डरयो हिय में । जग मात को ध्यानु धरयो जिप मैं ।

चंडी चरित्र उक्ति विलास छंद 8-9

दुर्गासप्तशती -

रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पलयस्य शरीरतः ।

समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ।।

दुर्गासप्तशती 8/41

चण्डी चरित्र उक्ति विलास -

जेतक स्रउन की बूँद गिरै रन तेतक स्रउनत बिंद ह्वै आई ।

चण्डी चरित्र उक्ति विलास 159

दुर्गासप्तशती -

कुतिशेनाहतस्याशु बहु सुस्त्रान शोणितम् ।

समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्परा क्रमाः ।

यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्त बिन्दवः ।

तावन्तः पुरूषा जातास्यद्वीर्यबलविक्रमाः ।

- दुर्गासप्तशती, 8/43-44

चण्डी चरित्र उक्ति विलास -

स्रउनत बिंद अनेक मरए असि लै करि चंडि सु ऐसे उठे हैं ।

बूँदन ते उठिकै बहु दानव बानन बारद जान बुठे हैं ।।

चण्डी चरित्र उक्ति विलास, 161

गुरु गोविन्दसिंह ने तत्कालीन युग के व्यभिचार, अत्याचार, अधर्म, अन्याय, अमानुषिकता आदि का नाश करके राम राज्य की स्थापना करने हेतु वाल्मीकि रामायण तथा तुलसीदास कृत रामचरितमानस के आधार पर प्रसिद्ध कृति रामावतार की रचना की । डॉ. ममता गुप्ता के अनुसार कुछ उदाहरण दृष्यव्य हैं -

गुरु गोविन्दसिंह ने रामायण के समान ही रामावतार के महात्म्य को व्यक्त किया है -

वाल्मीकि रामायण -

यः पठेच्छुणुयाल्लोके नरः पापाद्विमुच्यते ।

युद्धकांड 131/108

रामावतार -

जो इह कथा सुनै अरु गावै ।
दुख्र पाप तिह निकट न आवै ।

रामावतार, 859

वाल्मीकि रामायण -

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्य मही तले ।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।
यावद्रामायणकथा त्वत्कृति प्रचरिष्यति ।

- बालकाण्ड, 12/36-37

रामावतार -

राम कथा जुग जुग अटल
सभ कोई भाख्रत नेत ।

रामावतार 858

वाल्मीकि रामायण -

ततौ दशरथः प्राप्यः पायसं देवनिर्मितम् ।
बभूव परम प्रीतः प्राप्य वित्तमिवधानः ।।

रामावतार -

ख्रीर पात्र कढ़ाइ लैकरि दीन नृप के आन ।
भूप पाइ प्रसन भयो जिसु दारदी लै दान ।

दशम ग्रंथ, पृ.192

'रामावतार' में गुरु गोविन्दसिंह ने वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त रामचरितमानस से भी भावग्रहण करके अपना रचना कौशल दिखाया है । यथा -

रामचरितमानस -

राम रमापति कर धनु लेहूँ ख्रैंचहु चाप मिटै संदेहूँ

बालकाण्ड, 284

रामावतार -

तउ तुम साच लखो मन में प्रभ
जउ तुम रामवतार कहाओ ।
मेरी उतार कुवंड महाबल
मोहू कउ आज चड़ाइ दिखाओ ।

रामावतार, छंद 152

रामचरितमानस -

अतिविचित्र कछु बरनि न जाई । कनक देह मनि रचित बनाई
सीता परम रूचिर मृग देखा । अंग-अंग सुमनोहर बेषा ।।
सुनहु देव रघुवीर कृपाला । एहि मृग कर अति सुंदर छाला ।।
सत्यसंध प्रभुबधि करि एही । आनहु चर्म कहति बैदेही ।।

- रामचरित मानस, अरण्यकाण्ड, 27

रामावतार -

सीय बिलोक कुरंक प्रभा कह मोहि रही प्रभ तीर उचारी ।
आन दिजै हम कउ म्रिग बासुन स्री अवधेरा मुकंद मुरारी ।।

- रामावतार, छंद 352

रामचरितमानस -

मृग बिलोकि कहि परिकर बाँधा । करतल चाप रूचिर सर साधा ।
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई । फिरत बिपिन निशिचर बहु भाई ।।
सीता केरि केरहु रखवारी । बुधि बिबेक बल समय बिचारी ।।

- रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड 27

रामावतार -

प्यारी को आइस मेट सकै न बिलोक सिया कछु आतुर भारी ।
बाँध निखंग चले कटि सों कहि भ्रात इहाँ करिजै रखवारी ।।

- रामावतार, छंद 353

गुरु गोविन्दसिंह ने दुर्गासप्तशती और भागवतपुराण, रामायण आदि का भावानुवाद करने के साथ-साथ अपनी रचनाओं में प्रसंगवश अनेक संस्कृत ग्रंथों के अनुवादों को भी सजाया है । उन्होंने 'चौबीस अवतार' नामक रचना के आरंभ में अकाल पुरूष के अवतार धारण करने की बात कही है जो श्रीमद्भगवद्गीता के श्लोक का ही अनुवाद है, यथा -

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः ।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ।।

- श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4, श्लोक 7, 8

चौबीस अवतार -

जब जब होत अरिष्ट अपारा ।
तब-तब देह धरत अवतारा ।।

- चौबीस अवतार, छन्द 2

यहाँ गुरु गोविन्दसिंह ने उपरोक्त श्लोकों का सारानुवाद किया है ।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि बहुभाषाविद् गुरु गोविन्दसिंह विभिन्न पुराणों, रामायण, गीता, महाभारत, रामचरित मानस आदि अनेक ग्रंथों से अनुवाद करके अपनी रचनाओं को अधिक मार्मिक बनाया है । उन्होंने अपने अनुवाद कर्म के माध्यम से संस्कृत साहित्य के उन प्रसंगों एवं संदर्भों को पुनःसृजित किया जिन पर हिन्दू-मानस की दृढ़ आस्था आज भी उतनी ही दृढ़ है, जितनी प्राचीनकाल में थी । इस अनूदित साहित्य के माध्यम से ही उन्होंने निष्प्राण हो रही हिन्दू-संस्कृति को पुनःजीवित किया । और इस तरह उनके अनुवाद कर्म ने हिन्दी-साहित्य को एक और नई दिशा दी, जिससे हिन्दी साहित्य को और अधिक समृद्धि प्राप्त हुई ।

4.1.6 आचार्य सोमनाथ : एक अनुवादक :

सर्वांग निरूपक रीतिकवियों में आचार्य सोमनाथ का स्थान अति महत्वपूर्ण है । इनका जन्म सन् 1703 के आसपास उत्तरप्रदेश के छिरौरा गाँव (मथुरा) में हुआ था । इनके पिता का नाम नीलकंठ मिश्र था । सोमनाथ को शशिनाथ के नाम से भी जाना जाता है । 'रसपीयूषनिधि', 'श्रृंगारविलास', 'कृष्णलीलावती', 'पंचाध्यायी', 'सुजानविलास' और 'माधवविनोद' इनके द्वारा रचित ग्रंथ हैं । कृष्णलीलावती और सुजानविलास को छोड़कर शेष सभी ग्रंथ उपलब्ध हैं । माधवविनोद संस्कृत के माधवमालती नाटक का पद्यबद्ध अनुवाद है । पंचाध्यायी में कृष्णभक्त कवियों के समान रासलीला का वर्णन किया है ।[1]

सोमनाथ अथवा शशिनाथ के पिता नीलकंठ प्रकांड विद्वान थे ।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.314

नीलकंठ के पिता देवकीनंदन भी प्रकांड विद्वान थे । देवकीनंदन के पिता नरोत्तम मिश्र प्रसिद्ध विद्वान पंडित थे । इस प्रकार सोमनाथ में विद्वता तो अपने पूर्वजों से ही प्राप्त हुई थी । विद्वता के लिए प्रसिद्ध इस परिवार के वंशज होने के कारण भरतपुर के महाराजा बदनसिंह ने अपने पुत्र महाराजा सूरजमल की शिक्षा-दीक्षा के लिए उन्हें माँग लिया था । अतः भरतपुर दरबार में उन्हें राजकवि भी बनाया गया था । भरतपुर दरबार में वे दानाध्यक्ष के पद पर भी आसीन रहे । महाराजा सूरजमल ने अपने अनुज प्रतापसिंह के शिक्षक के रूप में भी सोमनाथ की नियुक्ति की थी ।[1]

रीतिकालीन कवि-आचार्यों ने अपनी रचनाओं में पद्यात्मक शैली को ही सामान्यतः अपनाया था । कवि-आचार्य सोमनाथ ने शास्त्रीय सिद्धान्तों को सूत्रबद्ध करते हुए उनकी वृत्ति को गद्यात्मक बनाया तथा व्याख्यात्मक विवेचन को गद्यात्मक वृत्ति में और उनके उदाहरण पद्य में रखने की शैली को भी अपनाया । संस्कृत काव्यशास्त्र के पद्यों का भावानुवाद तो सोमनाथ ने किया ही है, साथ-साथ भूषण, मतिराम, पद्‌माकर, अमीरदास आदि कई कवियों से भिन्न पूर्णतः मौलिक अनुवादकार्य भी किया है । डॉ. पूरनचन्द्र टंडन का मानना है कि "सोमनाथ वास्तव में एक ऐसे कवि, आचार्य एवं अनुवादक हैं जो अपने विविध अंगी एवं विविध विषयी काव्य-ग्रंथों, काव्यशास्त्रीय ग्रंथों एवं अनूदित ग्रंथों के आधार पर रीतिकालीन साहित्य और युग पर लगे सभी आक्षेपों को गलत, अप्रामाणिक, दुराग्रही तथा अल्पज्ञान-जन्म सिद्ध कर देते हैं ।"[2] सोमनाथ ग्रंथावली के तृतीय खंड की प्रस्तावना में श्री सुधाकर पांडे लिखते हैं कि "इतनी विविधतावाला व्यक्तित्व बड़ा विरल होता है । वे जाट राज्य परिवार के सर्वश्रेष्ठ कवि तो थे ही, मध्यकाल के अपने ढंग के अनूठे कवि, आचार्य, भाष्यकार एवं अनुवादक भी थे ।"[3]

डॉ. पूरनचन्द टंडन ने आचार्य सोमनाथ द्वारा रचित ग्रंथों में से अनुवादपरक छह ग्रंथों की सूचि दी है यथा -

(1) रामचरित्र रत्नाकर (संवत् 1794), (2) रास पंचाध्यायी (संवत् 1800)ष (3) सुजान-विलास (संवत् 1807), (4) माधव-विनोद (संवत्

1. अनुवाद साधना, डॉ. पूरनचन्द टण्डन, पृ.203
2. वही, पृ.204
3. सोमनाथ ग्रंथावली - तृतीयखंड, प्रस्तावना श्री सुधाकर पांडे, पृ.34

1809), (5) ब्रजेन्द्र-विनोद (संवत् 1815-1816 के आसपास) और (6) राम कलाधर (संवत् 1795 से 1800 के बीच अनुमानित)

आचार्य सोमनाथ ने वाल्मीकि रामायण के भावानुवाद को रामचरित रत्नाकर नाम दिया, श्रीमद्भागवत् के लीला अंश से रास पंचाध्यायी, सिंहासन बत्तीसी से सुजान विलास, मालती-माधव से माधव-विनोद, श्रीमद्भागवत् का दशम स्कंध से ब्रजेन्द्र विनोद, अध्यात्म रामायण के बालकाण्ड से रामकलाधर की रचना की है ।[1]

सोमनाथ द्वारा अनूदित कृतियों का चयन अधिकांशतः उनके आश्रयदाताओं के निर्देशानुसार ही हुआ है । जबकि श्रीमद्भागवत के लीला अंश का अनुवाद सोमनाथ ने अपनी इच्छा के अनुसार किया जिसका नाम उन्होंने 'रास पंचाध्यायी' रखा । रामचरित्र रत्नाकर की रचना सोमनाथ ने कुँवर प्रतापसिंह की आज्ञा से की थी -

तानैं कुँवर प्रताप कौ, हुकुम सुद्ध उर आनि ।
रामचन्द कौ चरित यह, रच्यौ महासुख्ख मानि ।।

- सोमनाथ ग्रंथावली (द्वितीय खंड), पृ.440

महाराजा सूरजमल की आज्ञा पाकर आचार्य सोमनाथ ने सिंहासन बत्तीसी का अनुवाद 'सुजान विलास' नाम से किया -

तातें सूरजमल्ल को हुकुम पाइ परकास ।
रच्यौ कथा बत्तीस भय ग्रंथ सुजान विलास ।।

- सोमनाथ ग्रंथावली (प्रथम खंड), पृ.815

कुँवर प्रतापसिंह के पुत्र राजा बहादुरसिंह ने आचार्य सोमनाथ को संस्कृत के महाकवि भवभूति कृत नाटक 'मालती-माधव' का अनुवाद करने के लिए कहा -

कही बहादुरसिंह ने एक दिना सुख पाइ ।
सोमनाथ या ग्रंथ की भाषा देहु बनाइ ।।
माधव और मालती के प्रेमकथा कौ ख्याल ।
बरनतु सो ससिनाथ कवि, हुकुम पाय के हाल ।।

- सोमनाथ ग्रंथावली (प्रथम खंड) पृ.320

1. अनुवाद साधना, डॉ. पूरनचन्द टण्डन, पृ.205

महाराजा सूरजमल (सुजानसिंह) के लिए आचार्य सोमनाथ ने श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कंध का अनुवाद किया -

"इति श्री मन्महाराज बजेन्द्र श्री सुजानसिंघ (सूरजमल्ल)
हेतवे माथुर कवि सोमनाथ विरचिते भागवत दशम स्कंध
भाषायां ब्रजेन्द्र विनोदे एक पंचशतमोध्यायः ।"

- सोमनाथ ग्रंथावली (द्वितीय भाग) पृ.485

कुँवर प्रतापसिंह के लिए आचार्य सोमनाथ ने अध्यात्म रामायण के बालकांड का अनुवाद 'रामकलाधर' नाम से किया -

श्री बदनसिंह ब्रजमंडल नाइक जग जाको जस छायौ ।
ताको कुँवर प्रतापसिंह वर आनंदनि अधिकायो ।।
तिहिं निमित्त कवि सोमनाथ ने रामचरित्र बनायौ ।
राम कलाधर नाम ग्रंथ को द्वितीय मूख्र लगाओ ।

- सोमनाथ ग्रंथावली (द्वितीय भाग) पृ.453

इसी प्रकार -

"इति श्री मन्महाराज कुँवर जदुकुलावतंस श्री प्रतापसिंह
हेतवे माथुरकवि सोमनाथ विरचिते
अध्यात्म रामायण भाषाणां
रामकलाधरे महात्मवर्णन नाम प्रथमो ममूख्रः ।।"

- सोमनाथ ग्रंथावली (तृतीय भाग) पृ.447

इस प्रकार आचार्य सोमनाथ ने अपने आश्रयदाता की आज्ञा-आग्रह से अनुवाद किया । इन अनुवादों में सोमनाथ ने संस्कृत भाषा के शब्द-प्रतीकों की जगह हिन्दी के कथनतः प्रतीकों का उपयोग किया है । डॉ. पूरनचन्द टंडन ने एक अध्ययन में आचार्य सोमनाथ के अनुवाद कार्य को उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है । उनमें से कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :

वाल्मीकि रामायण के सुंदरकांड (दशम सर्ग) में सीता रावण की धमकियों और प्रलोभनों का उत्तर देते हुए कहती है -

यथा तव तथान्येषां रक्ष्या द्वारा निशाचर ।
आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषुदारेषु रम्यताम ।।
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम ।
नयन्ति निकृतिपज्ञं परदाराः पराभवम् ।।

सोमनाथ ने इन चार पंक्तियों का अनुवाद ब्रजभाषा की आठ पंक्तियों में अत्यंत कुशलता एवं निपुणता से किया है -

सुज्यौ रक्षनी आपनी तोहि नारी ।
तिंही भाँति है और हूँ को पियारी ।
सबै आपनें जोग ही काज कीजै ।
स्वनारीनि मज्झैं रमौं सुक्ख लीजै ।
स्वदारानि में जो न संतोष मानैं ।
रहे चंचला रीति इंद्री निदानैं ।
सु ऐसे कुबुद्धिनि पै ती परांई ।
न आवैं कि हूँ भाँति सो मोह छाई ।

एक अन्य प्रसंग में हनुमान राम द्वारा दी गई मुद्रिका सीता को प्रदान करते हैं, महर्षि वाल्मीकि के वर्णन के अनुसार ही आचार्य सोमनाथ ने प्रसंग की अभिव्यक्ति की है :

वाल्मीकि रामायण -

भूय एवं महातेजा हनूया - पवनात्मजः ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाकयं सीता प्रत्ययकारणात् ।।
वानरोहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः ।
राम नामांकितं चेदं पश्य देव्यंगुलीमकम् ।।
प्रत्ययार्थ तवानीतं तेन दत्तं महात्मा ।
समाश्वसिद्धि भद्रं ते क्षीण-दुख्र फलाह्यसि ।।
गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा मुर्तः करविभूषितम ।
भर्तारमिव संप्राप्तं जानकी मुदिताभवत् ।।

सोमनाथ -

पवनपूत हनुमान पुनि बोल्यौ तेज उदार ।
सिय प्रतीति के काज कपि ह्वै उर में अविकार ।।
बुद्धिवंत श्रीराम को मैं हों दूत प्लवंग ।
हे बड़िभागिनी जानुकी, सांचु जाँनि सुभढंग ।।
राम नाम अंकित रूचिर, सुबरन की सुकँवारि ।
देवि देख्रि यह मुद्रिका, मन तैं संक निवारि ।।
दई विक्रमी राम नैं मैं लायौ इहि ठाम ।

तुम परतीति निमित्त सिय, ताजि अब दुख उदाम ॥
हर्षित अंग मुख पै रह्या अँसुवनि कौ जल छाय ।
ले देवी नैं मुद्रिका राखी सीस चढाय ॥
पति के कर कौ आमरन, गहि कै सिय सुकुँवारि ।
भनौं कंत ही सौं मिलीं, यौं हर्षी दुख टारि ॥

- सोमनाथ ग्रंथावली (द्वितीय भाग) पृ.150

श्रीमद्भागवत पुराण के एक प्रसंग भीम-जरासंघ युद्ध का सोमनाथ ने मूलनिष्ठ अनुवाद इस प्रकार किया -

श्रीमद्भागवत पुराण -

एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः ।
दिनानि निरगंस्तत्र सुहृदयन्नशि तिष्ठतोः ॥
एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन् वृकोदरः ।
शक्तोऽहं जरासन्धं निर्जेतुं युधि माधव ।

सोमनाथ -

यों लरतु दुहूँनि को महाराज ।
सत्ताइस दिन बीते सलाज ॥
अरु सुहृदनि की सी भाँति नित्र ।
ढिंग बैठत निसि में ह्वै सुचित ॥
एक दिना वृकोदर भीम सैन ।
उचरयो कृष्ण सों आपु बैंन ॥
हे माधव मो पै जरासन्ध
जीत्यो न जातु है जुद्ध-द्वंद्व ॥

- सोमनाथ ग्रंथावली (द्वितीय भाग) पृ.688

श्रीमद्भागवत पुराण -

शत्रोर्जन्ममृती विद्धान जीवितं व जराकृतम् ।
पार्थमारयायन् स्वेन तेजरसाचिन्तय द्धरिः ।
सच्चिन्त्यारिवधोपयं भीमस्यामोधदर्शनः ।
दर्शयामास विरपं पाठयन्निव संज्ञया ॥

सोमनाथ -.

यह भीमसैन की सुनत बात ।

रिपु जन्म मरन की समझि घात ।
राख्यौ जु जरा नैं तासु प्रानं ।
सो चिंत्यौ चित हरि बुद्धिवान ।
अरू तेज आपने सौं सुजान ।
हरि भीम पोखि किय बल निधान ।
अरू जरासंघ को बध उपाइ ।
चित में बिचारि तिहं लोकराइ ।
दरसत अमोघ श्रीकृष्ण चंद ।
तब किय उपाइ हितकर अमंद ।
इक तुच्छ डार लै स्याम हत्थ ।
सो चीरि दिखाई तिहिं समत्थ ।
मैं शाखा चीरी जिही विद्धि ।
तू चीरि याहि अब त्यों प्रसिद्धि ।

- सोमनाथ ग्रंथावली (द्वितीय भाग) पृ.689

इसी प्रकार श्रीकृष्ण की लीलाओं के श्रृंगारी वर्णन को आचार्य सोमनाथ ने संयम और बड़ी श्रद्धापूर्वक किया जबकि वे चाहते तो इनका अनुवाद अन्य रीति कवियों की भाँति अधिक अश्लील बनाकर अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने की मलीन चेष्टा कर सकते थे । परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और आदर्श अनुवाद हिन्दी साहित्य को अर्पित कर दिया ।

श्रीमद्भागवत पुराण -

प्रोत्फुल्लोत्पलकहलार कुमुदाम्भोजरेणुभिः ।
वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ।।
विजहार विगाह्याम्भो हदिनीषु महोदयः ।
कुचकुंकुमलिप्तांगः परिरब्धश्च योषिताम् ।।
उपगीय मानो गन्धवे मृदंगपणवानकान् ।
वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधवन्दिभिः ।।
सिच्यमानो च्युतरत्ताभिर्हसन्तीभिः रम रेचकैः ।
प्रतिसिंचन् विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ।।

- श्रीमद्भागवत पुराण (द्वितीय खंड), गीता प्रेस, पृ.694

सोमनाथ -

सरनि अमल कमलै छबि छाए ।
झरि पराग वासित जल भाए ।
ठाँ ठाँ कूजतिं खग सुखकारी ।
तहाँ जल क्रीड़ा करत मुरारी ।
लपटि तिर्यान सौं सहित सनेह ।
कुच कुंकुम करि राजतदेह ।
मागध सूत बंदीजन गावैं ।
वीनां ढोल मृदंग बजावैं ।
तानें त्रिय पिय कौं पिचकारी ।
हसति जात लागैं अति प्यारी ।
त्यौं ही हरि सींचति भए एसें ।
नृह कुबेर अपनी तिय जैसें ।

- सोमनाथ ग्रंथावली (द्वितीय भाग), पृ.844[1]

'माधव-विनोद' नाम देकर आचार्य सोमनाथ ने मालती-माधव नाटक का अनुवाद किया । इस नाटक का अनुवाद करते समय कथा का क्रम, पात्र, चरित्र, संवाद और अंक भी मूल के समान ही रखे हैं । मूल नाटक में सूर्य, गणेश और शिव की स्तुति है जबकि सोमनाथ कृत माधव विनोद में गणेश और कृष्ण की स्तुति है । सोमनाथ ने अंकों के नाम भी रखे हैं । डॉ. पूरनचंद टंडन निम्नलिखित उदाहरण देते हुए मानते हैं कि "नाटक को काव्यबद्ध करने का 'मालती माधव' वास्तव में सफलतम उदाहरण है ।"[2]

मूल :

सखि, दमितमालती जीविते, साहसोपन्यासिनि, अपेहि । (सास्त्रम)
अथवा । अहमेव बारंबारबं विलोकयन्ती
विलोकयन्ती पकत्यमान -
प्रतिष्ठापि धीरत्व: वष्टम्मेनात्यनो हृदयेन दूरं विलियमान -
लज्जत्वेन दुर्विनलध्वयत्रापराध्यामि । तथापि प्रियसखि ।
ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रै रात्रावखण्डकाल: शशी दहतु मदन:

1. अनुवाद साधना, डॉ. पूरनचन्द टण्डन, पृ.208-219
2. अनुवाद पत्रिका, अंक 96-97, जुलाई-दिसंबर 1998 में प्रकाशित डॉ. पूरनचंद टंडन का लेख 'आचार्य सोमनाथ', पृ.155

किं वा मृत्योः परेण विद्यास्यतः विद्यास्यतः मम तु दमितः
म्लाह्यस्तातो जनन्यमलान्वया कुलममलिनं न त्वेवामं जनो
न च जीवितम् ॥

- (मालती-माध्वम्)

अनुवाद :

हे सखि मो सुभ चाहनवारी ।
हिम्मत हिए बढ़ावनहारी ।
जा चलि कछू जू तोको भावै ।
तानि हिए तू सज्जि उपाबै ।
इतनो कहि अँसुआ भरि नैननि ।
उचरी भौ मालति पुन बेंननि ।
बेर बेर हों वाहि निहारी ।
सो मैनेई बात बिगारी ।
जैंकु न धीरज उर में लाई ।
अरु अपनी कुलकानि भुलाई ।
तुच्छ भई हों अति ही तातें ।
उरझि गई दुख मैं हित रातें ।
पै सुनि और सहचरि भेरी ।
भावति मोहि भलाई तेरी ।
तातैं तोसौं कहति अकेली ।
गुनि यों साँचु हिए में हेली ।

- सोमनाथ ग्रंथावली (प्रथम भाग) पृ.357

इस प्रकार आचार्य सोमनाथ ने संस्कृत के विभिन्न ग्रंथों आदि का अनुवाद किया, जो मूलनिष्ठ अनुवाद होने से हिन्दी साहित्य को संस्कृत की अद्वितीय कृतियों की पूँजी हिन्दी भाषा में ही उपलब्ध हो गई । मूलतः स्रोत-ग्रंथों के भाषा-रूपान्तर का लक्ष्य लेकर चले आचार्य सोमनाथ ने जहाँ आवश्यकता हुई वहाँ अनुवाद में पाठ- विस्तार किया तो अनावश्यक का त्याग भी किया, अपेक्षित का ग्रहण किया तो कहीं पाठ-संक्षेपण भी किया जिससे उनके अनुवाद सहज और मूल की तरह ही लगते हैं । रीतिकाल की इस अद्वितीय प्रतिभा ने हिन्दी साहित्य को अपने उत्कृष्ट अनुवादों के माध्यम से सम्पन्नता प्रदान की ।

4.2 रीतिकालीन गद्य-साहित्य और अनुवाद :

हिन्दी-साहित्य के आदिकाल की तुलना में रीतिकाल में गद्य-निर्माण अधिक हुआ है । रीतिकालीन गद्य-साहित्य में भी ब्रजभाषा और राजस्थानी गद्य-साहित्य सविशेष समृद्ध, प्रौढ, बहुमुखी और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुआ है। इस काल में टीकात्मक अनूदित कृतियों की संख्या अधिक है । कहानी, नाटक, कथा, चरित्र, वर्णन, प्रवचन, टीका, व्याख्यानुवाद, निबंध, वंशावली, जीवन-शैली की रचनाएँ आदि इस काल की प्रमुख गद्य-विधाएँ रही हैं । भिति-प्रशस्तियों, शिल्प-लेखों, कागज़-पत्रों आदि के रूप में भी गद्य प्राप्त हुआ है । इनके अलावा समाचारपत्रों और पुस्तकों के प्रकाशन का भी इस काल में प्रारंभ हुआ । इस काल में वल्लभ सम्प्रदाय में वार्ता नाम से प्रचुर गद्य-साहित्य की रचना हुई । इन वार्ताओं में वैष्णवजनों के पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने, उनके जीवन-प्रसंगों और आचार्यजी की महिमा के अतिरंजनात्मक विवरण हैं । इस काल की प्रमुख अनूदित रचनाओं में डॉ. नगेन्द्र के अनुसार 'मार्कण्डेय पुराण' (1648), 'विदग्ध माधव नाटक' (1767), 'वैताल-पच्चीसी', 'हितोपदेश ग्रंथ महाप्रबोधिनी', 'मित्र मनोहर' (1717), 'कथा-विलास', 'नासिकेतोपाख्यान' (1707), 'नासिकेत महापुराण' (1831), 'गरूड़ पुराण', 'पद्मपुराण', 'विचारमाला', 'राजनीति', 'कीमिया शआदत', 'कालयवन कथा', 'भागवत', 'सिद्धसिद्धान्त पद्धति' आदि ।[1] इसके अलावा अनूदित ग्रंथों की श्रृंखला में 'भाषा-उपनिषद', 'भाषायोगवासिष्ठ, 'भाषा पद्मपुराण', 'आदिपुराण वचनिका', 'मल्लीनाथ चरित्र वचनिका', 'सुदृष्टि तरंगिणी वचनिका', 'हितोपदेश वचनिका' आदि भी समाहित हैं जिनमें 'भाषा उपनिषद' (1719), तैत्तिरीयोपनिषद् आदि बाइस उपनिषदों के फ़ारसी अनुवाद का हिन्दी अनुवाद है । 'पारस भाग', 'गीतानुवाद', 'सूर्यसिद्धान्त', 'गोराबादल की वीरता', 'सिंहासन बत्तीसी', 'विष्णुपुराण भाषा', 'श्रीमद्भागवत भाषा' आदि भी उल्लेखनीय अनूदित रचनाएँ हैं ।[2] सदल मिश्र द्वारा किया गया 'अध्यात्म रामायण' का अनुवाद 'रामचरित्र', पंडित योगध्यान मिश्र द्वारा किया गया 'हातिमताई' का अनुवाद, तारिणीचरण मिश्र द्वारा संस्कृत से अनूदित 'पुरुष परीच्छा संग्रह', दयाशंकर द्वारा अनूदित 'दाय भाग', मीरां याकूब द्वारा

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.404-405
2. वही, पृ.409

'दलायलुल अतकिया' नामक ग्रंथों के अनुवाद, मोहम्मद वलीउल्ला क़ादिरी का किया हुआ 'मारिफ़तुस्सुलूक' का अनुवाद, अज्ञातनामा लेखकों की 'तूतीनामा', 'अनवारे सुहेली', 'किस्सा ए गुलो हुरमुज़' शीर्षक अनूदित कथात्मक पुस्तकें आदि भी रीतिकालीन अनूदित गद्य साहित्य के रूप में प्राप्त होता है ।[1]

इस प्रकार उपरोक्त विवेचनों पर से कहा जा सकता है कि भक्तिकाल की अपेक्षा रीति-काल में अनुवाद कार्य प्रचुर मात्रा में किया गया । साथ ही प्राचीन भारतीय वाड्मय के समान रीतिकालीन हिन्दी-साहित्य के भी प्रकाशन या योग्य देख-रेख की कमी के कारण अनेक उत्तम ग्रंथ लुप्त हो गए । इस काल के अधिकांश कवि राज्याश्रित थे । राज्याश्रित होने के कारण उनकी रचनाएँ आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने या फिर संस्कृतादि भाषाओं में रही कथाओं को समझाने के लिए रची गई । आश्रयदाताओं के पराक्रम दान-कर्म आदि का आलंकारिक वर्णन करने से इन कवियों को मान-सम्मान तो मिलता ही था साथ ही खूब धन और भूभाग भी मिलता । प्रबल धार्मिक संस्कारों के कारण भक्तिमय रचनाएँ करने से उन्हें आत्मसंतोष भी मिलता था । इसी कारण भक्तिकाल की तरह इस काल में भी रचनाकार अनुवाद कर्म की ओर झुके । कवि गंग, मल्ह कवि, तुलसीदास, रहीम आदि की तरह वृन्द, गिरिधर कविराय, दीनदयाल गिरि, महाराजा जसवन्तसिंह, गुरूगोविन्दसिंह आदि अनेक रचनाकारों ने खुलकर अनुवाद किए । हालाँकि इन सभी अनुवादकों की रचनाओं से हिन्दी साहित्य को अधिक लाभ हुआ है । हिन्दी के विकास में इन रचनाकारों का जो योगदान रहा वह आज हिन्दी-साहित्य के स्तर को देखकर समझा जा सकता है । भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा को सैद्धान्तिक दृष्टि से हिन्दी में प्रणयन करते हुए विवेचन और प्रयोग द्वारा रसवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा कर और सर्जना के क्षेत्र में कविता के कला-रूप की सिद्धि करते हुए भारतीय मुक्तक-परंपरा आदि का अपूर्व विकास करके रीतिकालीन रचनाकारों ने हिन्दी-साहित्य की समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.410-11-12